कविता प्रकाशन, बीकानेर

देश के दायरे



सं: मंजु गुप्ता

प्रकाशक कविता प्रकाशन तेलीवाड़ा, बीकानेर 334001
मूल्य तीस रुपये मात्र
संस्करण प्रथम 1982
आवरण अवधेश कुमार
मुद्रक विकास आर्ट प्रिंटर्स दिल्ली 110032

DANSH KE DAYREY Dr Manju Gupta Price Rs 30 00

श्रद्धेय
डॉ० नामवर सिंहजी
को
सादर समर्पित

क्रम

अपना-आरम्भ

स्वातन्त्र्योत्तर राजस्थान के हिन्दी गद्य साहित्य म हास्य व्यग्य पर शोध-काय करन और विश्वविद्यालय स उपाधि प्राप्त करने पर मैंने अनुभव किया कि यहाँ व्यग्य-लेखन की समद्ध परम्परा होते हुए भी इस दिशा म व्यवस्थित प्रयास नही हुए। यद्यपि वे मौलिक प्रयास परिपुष्ट होत हुए भी उनको समान दृष्टि के फोकस मे नही लिया गया, जिसस उनकी उपलब्धियो का सही मूल्याकन नही किया जा सका। व्यग्य को मैं स्वतन्त्र विधा मानती हूँ इसलिए मेरा यह दायित्व हो जाता है कि इन भावनाओ के धरातल पर ही अनुभव करते रहने की अपेक्षा व्यवस्थित कर मतक उपस्थित करूँ।

आज व्यग्य लेखन छिछले हास्य की सृष्टि करने वाला साधारण लेखन मात्र न रहकर उत्तरदायित्वपूण तथा साहित्यिक गरिमा से मण्डित होकर व्यवस्था के अन्तर्विरोधो का प्रकट करन का सशक्त माध्यम है। व्यग्यकार की गहरी सम्वेदनशीलता और सुतीक्ष्ण कलात्मक रूपान्तरण का आधार व्यग्य ही होता है।

व्यग्य को मैंने स्वतन्त्र विधा माना है। इसी का एक रूप निबन्ध है, जिनमे विनोदपूण रोचकता और मनोविज्ञान का गहरा पुट रहता है तथा जो सडी गली व्यवस्था के प्रति छद्म आक्रोश का मुखौटा ओढे सुविधाभोगी तथाकथित बुद्धिजीवी पर निरन्तर चुभते और तीखे प्रहार करते हैं। ये निबन्ध पूणरूप से व्यग्य विधा के दायरे म समाकर व्यग्य को निखरा और स्पष्ट रूप प्रदान करते हैं। राजस्थान म श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का 'कछुआधम' और 'मारेसि मोहि कुठाऊँ' इस प्रकार के व्यग्य की पहली कडी है जो केवल हँसी मजाक का विषय नही बल्कि जमकर विचार करने का विषय है। डा० कन्हैयालाल शर्मा, डा० त्रिभुवन चतुर्वेदी और उसके बाद अन्य व्यग्यकारो ने इसको आगे बढाया है।

यहाँ व्यग्य का अन्य विधाओ से विशेषकर कहानी से अलग एक विधा मानने के लिए अन्तर जानना आवश्यक है।

आज कहानी, नयी कहानी, अकहानी तथा सचेत कहानी के कई कँटीले मार्गों

से होती हुई नव बोध के साथ मानव तथा उसके अनेक क्रियाकलापों पर व्यंग्य करती प्रतीत होती है। यह एक निश्चित लक्ष्य या विशेष घटना के चारों ओर घूमती हुई मार्मिक अभिव्यंजना करती है तथा पाठक के सामने जीवन की परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब उपस्थित कर प्रत्यक्ष सम्वेदना जगाने का भरसक प्रयास करती है। कहानी का लक्ष्य केवल चरित्र, घटना या परिस्थिति विशेष पर पूर्ण प्रकाश डालना होता है। उसका क्षेत्र विशाल होता है, अपनी बात को खुलासा करने के लिए कहानीकार दूसरी घटना, प्रसंग या कभी कभी फ्लश बैक में लिये चलता है। कभी वह पाठक को आदर्शों के रेशमी धरातल पर तो कभी यथार्थ के कठोर धरातल पर ला पटकता है।

पर व्यंग्यकार का प्रमुख लक्ष्य किसी भी विशिष्ट पात्र, घटना या क्षण को माध्यम बनाकर व्यंग्य करना ही होता है। वह शब्दों की एक और तीखी मार से समाज की विसंगतियों को ऐसा उघाड़ पटक कर रखता है कि रचना खुद ब खुद व्यंग्य लगने लगती है। किसी व्यंग्य रचना की सार्थकता भी तभी होती है जब वह सादृश्य की गहराई तक पहुँच कर नश्तर जैसी चुभे। वह अपने पात्रों या घटनाओं का पूरी तरह निर्वाह करे यह आवश्यक नहीं, जहाँ उसका लक्ष्य पूरा हुआ कि रचना पूर्ण हो जाती है।

अपने सीमित क्षेत्र में चुनींदा शब्दों का विस्फोट ही व्यंग्य रचना के लिए काफी होता है। रचना का प्रयोजन भी तभी तक होता है जब तक कि व्यंग्यकार का मन्तव्य सिद्ध न हो जाय। श्री मधुकर गंगाधर के अनुसार—"व्यंग्य में वाणी रूपी छुरी लोहे की होती है और तेज धार से मांस काटता है। इससे क्षण भर के लिए आखेट भी कांप उठता है पर इसका निष्कर्ष हमेशा महत होता है।"[1] इसलिए व्यंग्यकार को कभी समाज सुधारक तो कभी उपदेशक का बाना पहनाना पड़ता है। उसका मुख्य उद्देश्य कभी प्रत्यक्ष कहीं परोक्ष रूप से समाज में सुधार लाना होता है।

जबकि कहानीकार का उद्देश्य किसी भी विसंगति पर व्यंग्य करना नहीं होता। कभी कभी तो कहानी बिना किसी उद्देश्य के कोई मार्मिक क्षण लेकर ही जीती है। जो भोगा जा रहा है उसी का वर्णन कहानी में होता है। यह वर्णन जितना यथार्थ होगा, कहानी भी उतनी ही यथार्थ होगी।

व्यंग्य में भी यद्यपि यथार्थ स्थिति का चित्रण होता है पर व्यंग्यकार अपने मन में एक आदर्श की स्थापना करता है, आदर्श से तात्पर्य ऐसी स्वस्थ और शिष्ट कल्पना जो अनेक विषमताओं या दुर्व्यवस्थाओं को देखकर जन्म लेती है और जो यथार्थ होते हुए भी आदर्श की कसावट में कसी रहती है। इसी आदर्श

---

1 श्री मधुकर गंगाधर—जीवन और साहित्य—निराला, पृष्ठ 76

का आश्रय लेकर व्यग्यकार व्यग्य की सृष्टि करता है। वह अपनी बात यथाथ ठसके से नही वरन् आवश की खट्टी मीठी चाशनी म सराबोर कर इस ढग से कहता है कि—

'रह गये मुह फाडे हम, कहने वाला कह गया—
फिर पूछ इस उससे हैं, हाय ! फिर कहो क्या कह गया !'

अत व्यग्य को पूरी नाकेबन्दी के साथ आदश और कलात्मक रूप देने के लिए बडे सयम की आवश्यकता है।

कहानी मे कहानीकार समस्याओ का निदान पान क लिए विचारशील रहता है और चिन्तन मनन द्वारा उन समस्याओ के निदान तक नही पहुँच पाता तो कारण तक अवश्य पहुँच जाता है और इसीसे वह सन्तुष्ट हो जाता है—पर व्यग्यकार को इतने से ही चैन नही मिलता। वह व्यग्य का आश्रय लेकर उस बिन्दु को खोज निकालता है और तुरन्त आक्रमण की मुद्रा अपना कर दुबलता तथा विरूपता को समक्ष रख कर उनका पर्दाफाश करता है। अपनी व्यवहार-पटुता तथा शब्द कौशल से वह बडे बडे व्यक्तित्वो तक को बीध डालता है[1] तथा अपने सवमान्य विचार तथा अकाट्य तक द्वारा वह अपनी बात कहता है।

डॉ० शेरजग गग के अनुसार—'व्यग्यकार की सम्पूण शक्ति विचार म थन मे ही लगी रहती है। वह विचार करता है और चीजो व्यक्तियो तथा स्थितियो मे से ऐसे बि दु निकाल लेता है उन्हे व्यग्य मे व्यक्त करता है जो मौजूद हैं, मगर जिन्ह नही होना चाहिए था—या जो नही है मगर जि ह होना चाहिए था।[2]

व्यग्यकार का विवेकशीलता, तटस्थता, निष्पक्षता के साथ अह भाव को भी तिरोहित करने के लिए तयार रहना पडता है। व्यग्य करने के साथ उसे व्यग्य सुनने के लिए भी तत्पर रहना पडता है, पर कहानीकार यह कभी नही स्वीकारेगा कि उसे बीच चौराहे पर निवस्त्र किया जाये। जहा ऐसी परिस्थिति उत्पन्न भी होगी वह तुर त परिस्थितियो से समझौता कर लेगा। वहा व्यग्य कार किसी भी प्रकार का समझौता नही चाहता, वरन् वह समाज के ढुलमुल पुर्जों को बदल डालन तक के लिए प्रतिबद्ध रहता है।

कहानी म सीधे सरल प्रचलित और आचलिक शब्दो का प्रयोग अधिक-तर पाया जाता है। व्यग्य का प्रयोग कहानी मे उतना ही होता है कि पाठक हल्की सी चुभन महसूस करे—बस—। पाठक पात्र, घटना या मार्मिक प्रसग मे

---

1 देखिए —लौटना एक नेता का वापस घर को मुद्रा राक्षस—साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 21 जून से 27 जून 81

2. डा० शेरजग गग—व्यग्य के मूलभूत प्रश्न पृ०, 107

इतना खो जाता है कि इतने हल्के व्यंग्य को वह भूल जाता है।

व्यंग्यकार अपना सम्पूर्ण ध्यान अपने व्यंग्य पर ही रखता है। वह कहीं वक्रोक्ति द्वारा तो कहीं वाग्वैदग्ध्य द्वारा, कहीं परिहासजन्य चुटकुलों में तो कहीं अतिशयोक्ति तथा अपकर्ष द्वारा अपने आलम्बन पर ऐसा तीव्र तथा प्रखर बाण छोड़ता है कि वह बाण साधारण पाठक की पकड़ के बाहर हो जाता है। इस दृष्टि से व्यंग्यकार को निर्भय, सजग तथा सचेत रहना पड़ता है तभी वह सामाजिक तथा मानवीय दुर्बलताओं को अपनी मुट्ठी में पकड़ जादुई खेल दिखाने की चेष्टा करता है, जबकि कहानीकार के लिए यह आवश्यक नहीं।

वस्तुतः व्यंग्य का एकमात्र उद्देश्य विसंगतियों को झकझोरना है। अनेक प्रकार की सामाजिक दुर्बलता तथा विरूपताओं के विरुद्ध सत्याभिव्यक्ति के लिए व्यंग्य एक ऐसा पात्र है जिसकी ऊर्जा की तपन से सारी विधाएँ द्रवित होकर तरल हो जाती हैं और पात्र की ही आकृति ग्रहण कर लेती हैं।

जिस प्रकार पानी का अपना कोई आकार नहीं होता पर अपने गुण धर्म से वह जिस भी पात्र में स्थापित होगा उसी तरह की आकृति ग्रहण कर लेगा। उसी प्रकार व्यंग्य रूपी पात्र में व्यंग्यात्मक कहानी या उपन्यास आदि समाविष्ट होते ही व्यंग्य का रूप धारण कर लेते हैं और आज तक उन्हें कहानी या उपन्यास, कविता तथा नाटक ही माना जाता रहा है। उदाहरण के लिए इस संकलन में राजस्थान के प्रतिनिधि कथाकार श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' की 'एक फिल्म महान रवि पर' श्रीमती सावित्री परमार की 'पोशीदा राज' तथा श्री योगेन्द्र किसलय की 'एक कुत्ते की मौत' व्यंग्यात्मक सशक्त कहानियाँ हैं जो व्यंग्यपूर्ण होते हुए भी कहानी के सभी तत्वों को लिये चलती हैं।

श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी', बदीउज्जमा का 'छठा तन्त्र', श्री अशोक शुक्ल का 'प्रोफेसर पुराण', श्री हरिशंकर परसाई का 'सदाचार का तावीज', शरद जोशी का 'मिक्सम और मिक्सम गाथा', ओ० पी० शर्मा 'सारथी' का 'नगा रूट', मन्नू भण्डारी का 'महाभोज' आदि अनेक ऐसी सशक्त तथा प्रतीकात्मक व्यंग्य रचनाएँ हैं जो समाज के विभिन्न पात्रों का सजीव एवं सामयिक घटनाओं की विसंगतियों का जीवन्त चित्रण हैं। व्यंग्य के कैनवास पर यथार्थ के चौखटे जड़े कर अपने विचारों के रंग भरना और विसंगतियों पर चोट करना ही इन रचनाओं का उद्देश्य रहा है।

श्रीलाल शुक्ल के 'राग दरबारी' में शिवपाल गंज एक काल्पनिक गाँव है, जो राजनीतिक गन्दगी में आकण्ठ डूबा है। डा० इन्द्रनाथ मदान 'राग दरबारी' को एक व्यंग्यात्मक रचना मानते हुए कहते हैं 'इस उपन्यास के बारे में यह कहना कि यह व्यंग्य नहीं है और यह एक आंचलिक उपन्यास है, इसके मूल रचना विधान की उपेक्षा करना है। राग दरबारी में व्यंग्य का गहरा

पुट है जो जीवन को वास्तव में एक और धरातल पर उजागर करता है। यह उपन्यास कभी कभी व्यंग्य लेखों का सकलन लगता है।

'सदाचार का तावीज' 'तिलस्म गाथा', तिलस्म' आदि ऐसी रचनाएँ हैं जिनमें कथा, प्रसंग या घटना को इतना महत्व नहीं दिया गया जितना सामाजिक विरूपताओं को उघाडने के लिए तीक्ष्ण उपयुक्त और सम्वेदनशील व्यंग्यों का। व्यंग्य खुद-ब खुद सत्य का उद्घाटन करते चलते हैं।

श्री अशोक शुक्ल का प्रोफेसर पुराण शिक्षा जगत् पर तीव्र प्रहार करता है। स्वयं लेखक के शब्दों में—"मगनूराम सामान्य शिक्षक के प्रतीक हैं। निगम साहब शिक्षक की उस विवशता के पर्याय है जो चाहकर भी कुछ अच्छा न कर पाने के कारण अच्छे बुरे से ऊपर उठ गई है एक जड तटस्थता प्राप्त कर ली है उसने।"

श्री बदी उज्जमा के 'छठा तन्त्र' में पचतन्त्र की कथा को आधार बना कर मजहब, गाधीवादी-प्रवृत्ति आदि अनेक प्रकार की समस्याओं पर चोट कर जहाँ व्यंग्य को सम्प्रेषण मिला है वहीं मन्नू भण्डारी का 'महाभोज' अपनी व्यंग्यात्मक आभा से अपने चौतरफा षडयन्त्र को सख्ती के साथ उभार कर व्यंग्य विधा में एक और कीर्तिमान स्थापित करता है। ओ० पी० शर्मा सारथी' का डोगरी से हिन्दी अनुवादित 'नगा रुख' का प्रत्येक पात्र मुखौटा ओढे हुए है जिसके कारण वह कुछ करना चाह कर भी कुछ कर नहीं सकता।

कहने का तात्पर्य यह कि व्यंग्य को इन रचनाओं में व्यापक विस्तार मिला है तभी व्यंग्य का प्रत्येक अस्त्र, तत्व अपनी पूर्ण कुशलता के साथ निखर कर आया है और व्यंग्य का एक व्यवस्थित रूप देकर एक अलग अस्तित्व के रूप में कहने को विवश करता है।

दरअसल व्यंग्यकार जीवन की बेबाक सच्ची तस्वीर दिखाता है साथ ही सामाजिक मान मूल्यों को सहज ग्राह्य बनाता है। जातिगत, सम्प्रदायगत कूप मण्डूकता से बाहर निकल कर सम्वेदना और मार्मिक कचोट के साथ वह अनेक प्रवचनाओं पर चोट करता है तभी व्यंग्य विधा उच्चस्तरीय विधा के रूप में स्थापित होने का सफल प्रयत्न कर रही है।

वैसे भी आज व्यंग्य का स्वतन्त्र विधा मानने वालों की कमी नहीं। श्री हरिशंकर परसाई, श्री शरद जोशी, के० पी० सक्सेना, डॉ० कन्हैयालाल नन्दन, डॉ० शेरजग गर्ग, डॉ० वीरेन्द्र मेहदीरत्ता रवीन्द्र त्यागी आदि अनेक ऐसे व्यंग्य कार हैं जिन्होंने व्यंग्य को काट तराश कर एक ऐसी स्वच्छ तथा मनमोहक मूर्ति का रूप प्रदान किया है जिसकी आभा से और विधाएँ फीकी निस्तेज लगती हैं। प्राय प्रत्येक पत्रपत्रिका में 'हास्य व्यंग्य', 'ताल बेताल' बढे ठाले' शीर्षक से एक स्थायी स्तम्भ भी इन व्यंग्यकारों की साधना का ही परिणाम है।

परसाई जी व्यंग्य को श्रेष्ठ विधा मानते हुए कहते हैं कि "व्यंग्य का दायरा इतना विस्तृत है कि यह सभी विधाओं को अपने ऊपर ओढ़ लेता है।" उनका यह कथन जहाँ व्यंग्य को महत्वपूर्ण सिद्ध करता है वहीं अलग विधा के रूप में भी स्थापित करता है।

यूँ भी साहित्य के लिए व्यंग्य एक ऐसी विधा है जिसके बिना तराश नहीं आ पाती।

डॉ० शेरजंग गर्ग तथा डॉ० वीरेन्द्र मेहदीरत्ता ने हास्य व्यंग्य पर शोध कार्य किया है तथा शेरजंग गर्ग की पुस्तक 'व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न' व्यंग्यविधा को अन्य विधाओं से जोड़ने की सफल कड़ी है पर फिर भी वे व्यंग्य को संभवतः 'साहित्यिक माध्यम' भर रहकर रह जाते हैं। मेहदीरत्ता भी व्यंग्यात्मक रचना को व्यंग्यविधा की शृंखला में खड़ी करने में संकोच करते हैं। वे कहते हैं कि जब किसी साहित्यिक कृति के उद्देश्य की पूर्ति प्रधानतः व्यंग्य द्वारा हो तभी उस व्यंग्यात्मक रचना को संज्ञा दी जा सकती है।

मेरे इस संकलन में व्यंग्य एक निकलुष आत्मा है जो कभी सामाजिक चोला पहिन कर विरूपताओं का दरवाजा खटखटाती है, तो कभी राजनीति का झीना वस्त्र पहिन कर विसंगतियों को अपनी गिरफ्त में लेकर उसका सीना चाक करती है, कभी शिक्षा जगत का चिकना, मखमली परिधान पहन कर उसकी भीतरी पर्तों में व्याप्त भ्रष्टाचार और अव्यवस्था पर तीखा प्रहार करती है।

इसकी सभी रचनाएँ समाज की दिशाहीनता, दृष्टिहीनता को अपनी शिकस्त में बाँधकर जीवन की तीखी और सख्त स्थितियों को स्थूल तथ्यों में ही पेश नहीं करती वरन् उसके भीतर की अंतवर्ती धारा को पकड़कर व्यंग्य-साहित्य में अपना अलग स्थान बनाती हैं।

मेरे इस प्रयास की सभी रचनाएँ सामाजिक यथार्थ को वैयक्तिक स्तर पर सम्प्रेषित करती हैं। यथार्थ ठोस होते हुए भी व्यंग्य के स्पर्श से पारदर्शी हो जाता है और वस्तुस्थिति की तीखी प्रतीति के जरिये एक तराशा व्यक्तित्व तथा स्वस्थ समाज प्रदान करता है।

संक्षेप में जब ये रचनाएँ स्थितियों की पीड़ा तथा निराशा को व्यक्त करती हैं, मौकापरस्ती और चाटुकारों की पेचीदा नीतियों का यथातथ्य चित्रण प्रस्तुत करती हैं। शिक्षा संसार में व्याप्त भ्रष्टाचार और मान मूल्यों की परत परत खोलती है तो कौन कह सकता है कि राजस्थान में श्रेष्ठ व्यंग्यकारों का अभाव है! ये रचनाएँ अपने आसपास की जिन्दगी पर गहरी आत्मीयता के साथ नजर डालती हैं, एक ऐसी नजर जो व्यंग्कार की अपनी नजर है, उसके मन की गहरी और तीखी छटपटाहट है। व्यक्ति मानस की अनिश्चित रिक्तता,

अलगाव और अजनबीपन का आभास है जो यहाँ के व्यंग्य लेखकों को चोटी के व्यंग्यकारों के समक्ष खड़ा करने में समर्थ हैं।

इन व्यंग्यकारों के अतिरिक्त राजस्थान के व्यंग्य साहित्य में अभी भी कई हस्ताक्षर ऐसे हैं जिनमें खासी पनेम है और जो निरन्तर व्यंग्य विधा को निखार देने में प्रयत्नशील हैं।

डॉ० मंजु गुप्ता

कुछ नही के फूल

सतजुग की बात है । एक था ढेला और एक था पत्ता । दोनो मे बडी दोस्ती थी, सत्ता और मद सी । पानी आता तो पत्ता ढेले को ढक लेता कि कही घुल न जाये । आंधी आती तो ढेला पत्ते पर बैठ जाता कि कही उड न जाये । एक दिन दोनो मे हो गई लडाई कि कौन छोटा, कौन बडा ! तब तक आँधी पानी साथ-साथ आ गये । आंधी ने उडा लिया पत्ता और पानी ने घुला दिया ढेला । दोनो उडते रहे—घुलते रहे उडते रहे—घुलते रहे। लेकिन लडते सतयुग भर रहे कि कौन छोटा, कौन बडा !

त्रेता मे एक बना सेवा, एक बना सत्ता । एक दिन दोनो मे हो गयी लडाई कि कौन छोटा, कौन बडा ! दोनो हो गये गुत्थमगुत्था, तो इस कदर घुल मिल गये कि पहचाने ही न मिलें । लगे, कि सत्ता हो गई है सेवा और सेवा हो गयी है सत्ता, दोनो त्रेता भर लडते रहे—लडते रहे !

द्वापर मे एक बना राजा, एक बना प्रजा। एक दिन दोनो मे हो गयी लडाई कि कौन छोटा कौन बडा ! दोनो ने वेश बदल लिये । एक बन गया दिन, दूसरा बन गया रात—और भागे एक दूसरे के पीछे । कभी दिन आगे, कभी रात आगे । इसी तरह भागते रहे—भागते रहे द्वापर भर ।

कलयुग मे एक बना असली एक बना नकली । एक दिन दोनो मे हो गयी लडाई कि कौन छोटा, कौन बडा ! असली ने कहा, "मैं बडा हूँ, क्योकि मैं असली हूँ ।'

नकली नही माना । बोला, "अपने को तो सभी असली कहते हैं, लेकिन असल मे असली हू मैं इसलिए मैं बडा ।"

असली के तन मन मे लग गई आग, उसने जलकर कहा, "कसम खाकर कह कि क्या तो है तू और क्या हू मैं ।'

नकली ने नकली कसम खाकर कह दिया, 'अच्छा तो सुन ! असली हू मैं और तू है कुछ नही का फूल ।"

लेकिन असली भी असली था। उसने पकडा नकली का हाथ और कहा,' ऐसा

है तो चल राजधानी। चलकर हाईकमान के सामने सिद्ध कर कि तू है असली और मैं हूं—कुछ नहीं का फूल।'

दोनों ने अपने-अपने गुरु के चरण छुए, चल पड़े। दवलोक का मामला, राजधानी थी आसमान म। सवेरे चले थे, तब भी पहुंचते पहुंचते शाम हो गई। दोनों थक गये थे, शहर के सदर दरवाजे के बाहर वाली सराय म टिकने गये, लेकिन वक्त की बात, सराय थी लबालब भरी। सिफ एक सिंगल कोठरी खाली थी। इसलिए नकली ने कहा, 'एसा करें असली, कि मैं तो सराय मे आराम करू और तू जा शहर के भीतर।"

"इससे क्या होगा ? यह पता कैसे चलेगा कि कौन छोटा कौन बड़ा !" असली ने पूछा।

"देख, तू शहर म जाकर रात भर मे खोज ले और जो चीज तुझे बिल्कुल असली लगे, उसे ले आ। सवेरे आकर तू सोना और मैं जाऊगा शहर मे। शाम तक, अगर मैं सिद्ध कर दू कि तेरी लायी चीज नकली है तो मैं जीता, न सिद्ध कर सकू तो तू जीता। बोल, मजूर है ?"

असली ने मजूर कर लिया। नकली तो सो गया सराय मे। और असली चला शहर के भीतर।

□

असली ने शहर म घुसते ही सोचा—सबसे पहले यही देख लिया जाय कि इस शहर मे कितने हैं असली और कितने हैं नकली! देखें, किसकी कितनी फॉलोइंग है!

लेकिन देखो अचभे की बात उस रात असली को सारे शहर मे कोई असली मिला ही नहीं। मिले तो वे मिले, जो आगे पीछे से नकली थे, ऊपर नीचे से नकली थे। आदमी देखे तो नकली मिले, जैसे मुखौटे हो। औरतें देखी तो नकली मिली, जैसे मशीन हो। दोस्त देखे तो नकली मिले जैसे दुश्मन हो। धम देखे तो नकली मिले जैसे अधे हो। ऊपर से छा गया था रात का अंधेरा, इसलिए पक्के तौर पर यह भी पता नहीं लग रहा था कि ये सब जो नकली दीख रहे हैं असल मे नकली भी हैं कि नहीं!

रात का समय और नकली नगर। खोजते खोजते थक गया तो असली ने सोचा—चलो मान लिया कि सारी दुनिया की तरह यह शहर भी नकली है मगर यहा का धमराज तो असली होगा ही। वह तो खुद इसाफ करता है। बताता है कि क्या असली और क्या नकली है! वह चाहे तो भी असली के सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता चलो वहीं चलें।

चल पड़ा। बिल्ली के चलन म तो खर फिर भी कुछ आहट होती है मगर

असली धमराज के घर ऐसे दबे पाव घुसा कि हवा तक को उसकी गध न मिली। घर मे स नाटा था, मक्खी मच्छर तक सो गये थे। घूमते घूमते असली पहुचा धमराज की पूजा वाली कोठरी म। देखा तो भक्तिभाव से मक्खन सा पिघल गया। भगवान की फोटो के सामने एक न हा सा दीया जल रहा था, असली घी का। पास ही रखी थी एक अशर्फी—चदन, सिदूर, अक्षत और पुष्पो की पूजा के चिह्नो स मडित धमराज रोज सबेरे दफ्तर जाने से पहले इसकी पूजा करके जाते थे, यह अशर्फी पुश्तैनी थी, पुरखो की थी इसलिए वे इसे अपने ईमान का प्रतीक मानते थे, पूजते थे।

कचन कामिनी को दूर स परखे सो योगी और छूकर परखे सो भोगी। लेकिन रात का वक्त हो और निजन एकान्त हो तो योगी और भोगी का भेद भाव कैसे चले ! छूकर देखने की इच्छा हुई तो असली ने हाथ उठाकर देख ली अशर्फी। बिल्कुल खरी थी, असली सोने की।

सोना तो चीज ही एसी है कि आख से देखा तो मन सनसनाये और हाथ से देखो तो तन सनसनाये। असली ने छू लिया अशर्फी को, तो लोभ जागा। उसने सोचा—इसी असली अशर्फी को लिये चलता हू। देखता हू नकली इसकी असलियत को कैसे झुठलाता है, इसे कैसे भ्रष्ट करता है !

फिर क्या था ! असली गध बनकर आया था। धुआ बनकर उड गया वापस नकली के पास। रात अब प्रौढा के हुस्न सी ढल चली थी और सूरज मा के पेट मे फडकने लगा था।

□

नकली जो था सो नकली नीद म आखें मूदे पडा था। असली ने जगाकर कहा, "सुन भाई नकली, इस शहर मे तेरी तो कोई सुनेगा ही नही क्यो कि वहा असलियत पुजती है।'

नकली बोला यह तो मैं आखो देख लू, तब भी न मानू कि असलियत कभी पुज सकती है ! तुझे धोखा हो गया है।'

असली न अशर्फी दिखा दी "देख, इम असली अशर्फी को शहर का धमराज तक पूजता है। मेरी न माने तो पूछ ले इसी से।'

नकली ने पूछा न ताछा देखा न भाला, मुह बिचकाकर बोला, 'यह अशर्फी ? अशर्फी तो नकली है, मैं सिद्ध कर सकता हूँ।'

असली का आ गया ताव। उसने चुनौती दी "अच्छा तो सिद्ध कर ! अगर तूने इस अशर्फी को नकली सिद्ध कर दिया तो मैं मान लूगा कि तू असली और मैं कुछ नही का फूल ! न सिद्ध कर सका तो तू नकली, तेरा बाप नकली।'

नकली मान गया, तो रात भर का थका हारा असली पडकर ।

और नकली चला शहर के भीतर ।

□

नकली ने शहर में घुसते ही सोचा—सबसे पहले यही देख लिया जाय कि किसकी कितनी फालोइंग है ! देखें इस शहर में कितने हैं नकली और कितने हैं असली !

लेकिन देखो अचभे की बात, उस दिन नकली को सारे शहर में कोई असली मिला ही नहीं । नकली तो नकली थे ही असली भी नकली बने घूम रहे थे । कुछ लोग सभ्यता शिष्टता के चक्कर में नकली बन गये थे, कुछ लोग सत्ता और धन के चक्कर में । कुछ असलियत जान जाने के कारण नकली बन गये थे, कुछ न जान पाने के कारण । कुछ असलियत में बोर होकर नकली बन गए थे, कुछ असलियत के आउट आफ फैशन हो जाने के कारण । बाकी बचे असलियों को कुछ थोड़े से नकलियों ने सुविधाओं के बदले गिरवी रख लिया था । यानी, कारण थे सौ पचास, पर बात थी सौ बात की एक कि सब के सब नकली थे । इस कदर नकली कि देखने में बिल्कुल असली जान पड़ें !

ऐसी अटूट फालोइंग देख जो न फूले सो पक्चर । नकली तो फूलकर कुप्पा हो गया, जैसे सात महीने का पेट हो ! उसने पहले तो मंत्र पढ़कर माया फैलायी, फिर एक पान अर्दे का खाकर मूछों पर ताव फेरते चला देखने कि यह असली अशर्फी वाला मामला क्या है !

नकली की माया ! अब इधर सवेरा और उधर धमराज के बँगले में लग गई जैसे इमरजेंसी ! कुर्सियाँ तक सिटपिटायीं, दीवारें तक खामोश । नल से पानी तक डरता डरता टपके और रसोई में स्टोव तक बिना आवाज किये जले । सबके चेहरे भरे भरे गलों में लटके हुए सारे बंगले में एक सवाल लाल लाल आँखें निकाले बेंत फटकारता गरजता घूम रहा था कि सारे खिड़की दरवाजे तो अंधविश्वास से बंद थे, फिर भला पूजा वाली पुश्तैनी अशर्फी गयी तो कहाँ गई कैसे गई, कब गयी !

मेमसाहब धमराज कुछ थोड़ा स्ट्रल थीं । ऐसी तगड़ी कर्मकांडिन कि बिना नहाये धोये बाथरूम तक न जायें । ऐसी भगतिन कि बिना हरिनाम लिये गाली तक न दें । लड़ें तो मुहल्ले के कुत्ते तक भौंकना भूल जायें, रोयें तो धमराज की पतलून तक का पसीना छूट जाय । उन्होंने भी अशर्फी की चोरी का हाल सुना ।

तिरिया का हठ उसमें क्या तो हो 'इफ' और क्या हो 'बट' धमराज ने लाख समझाया कि अशर्फियाँ और लड़कियाँ तो प्रतापी पुरुषों के जूतों के तलों की रगड़ से बरसती हैं, उनका भला क्या शोक ? अभी घंटे दो घंटे में सराफा

बाजार खुला जाता है मुणीजी को भेजकर नयी मगवाये लेते है। पर मेमसाहब न मानीं। उल्टे हठ पकड गइ कि पूजा वाली अशर्फी तो कुल का ईमान थी, वश की बरक्कत थी वही चली गई तो अब बचा क्या ! इसलिए जब तक वही असली अशर्फी वापस नही आ जाती, तब तक वे खायेंगी तो सिर्फ तुलसीदल और पियेंगी तो सिर्फ गगाजल !

धमराज ने विनत हो प्रस्ताव किया, ' लेकिन एक कप चाय तो ।"

"अब चाय पीयेगी मेरी मिट्टी ! तुम तो सच्ची धरम-करम को घोलकर पी गये हो। बोलो, जब तुम अपने ही घर की चोरी का भेद नही पा सकते, तब फिर कर चुके तुम धमराजी ! ऊपर से चले हैं चाय पिलवाकर मेरा सत डिगाने बडे आये कहीं के।"

धमराज नानी तो थे ही, पहले आग्यूमेंट म ही समझ गये कि अब इस घर मे मेमसाहब के प्राण और अशर्फी रहगे, तो दोनो रहेंगे, वर्ना दोनो जायेंगे। इसलिए उन्होने हुक्म दिया कि पूछताछ के लिए घर के सारे नौकर चाकरो को इकट्ठा किया जाये।

अब देखो किस्मत का खेल। गाडावण पक्षी सा धमराज का हुक्म अभी उडा ही था कि मेमसाहब के बाज जस हुक्म ने धर दबोचा। मर्दाना हुक्म जनाना-हुक्म लड गये बाकी बचा शून्य ! दहाडकर बोली, ' सच्ची, तुम तो अब बिल्कुल से सठिया गये हो, जो अपने ही चाकरो पर चोरी लगा रहे हो ! ऐसा करो, कि चाकू लेकर पहले काट लो मेरी नाक, फिर मेर नौकरो पर चोरी लगाना !"

देव यक्ष हो तो यज्ञ से मना लो भूत प्रेत हो तो मत्र से मना लो, पर हवा-बयार हो तो उसे कसे मनाओ ? मेमसाहब हो गई थी हवा, गरम-गरम लू सी सारे घर मे झनाती घूम रही थी। इसलिए धमराज और हुक्म—दोनो पिटे पिल्लो से दुम दबाए भागे—ड्राइग रूम को।

मेमसाहब की अटूट दहाड से घबराकर पेडा स वनपाँखी उडे, ड्राइग रूम से फोन—एक फोन राजा को एक फोन मत्री को, एक फोन मन्त्री के नव-बालिग लडके को। पलक झपकते झपकते तीनो फोन रास्ता बदलकर जा पहुचे कोटपाली। हर फोन ने कोटपाल साहब को डाटा और हुक्म दिया, अशर्फी बरामद करो।

कोटपाल साहब बचपन से ही गणित में कमजोर थे, ऊपर से सवाल मिला बेहद जटिल। शाम तक हल करके उत्तर खोजना था, कि यदि बाहर से कोई आया नही और भीतर किसी ने ली नही तो बनाइये कि अशर्फी कहाँ गयी ?

हारकर कोटपाल साहब ने दरबार लगाया। खुद बठे कुर्सी पर, सामने स्टूल पर रखवाया पान का बीडा। ललकारकर बोले, "ऐ मेरे वीर सिपाहियो, तुमने लाखो केस सुलझाये हैं। खूब मजे ले-लेकर, उलझा उलझाकर सुलझाये हैं, लेकिन

यह बडा अटपटा केस है। जो अपने को बडा तीसमारखा समझता हो, वह उठा ले बीडा और करे बरामद अशर्फी !

दरबार म छा गया सन्नाटा मुलगी बीडियाँ तक बुझ गई। खिसके पतलून तक कस गये। सभी सिपाही एक नजर देखें अपनी औकात की ओर दूसरी हस रत भरी नजर स देखें बीड को।

सरसरी निगाह से देखा ता आसमान म सब तारे ही-तारे हैं, लकिन गौर स देखो, तो इन तारा के बीच एक चद्रमा भी है। सिपाही थे तारे, चद्रमा थे चीफ साहब ! उन्होने बीडा उठा लिया। बाल, "हुजूर, आपकी मेहरबानी स बदे ने शौक मौज किये हैं। बिल्डिगें बनवायी हैं, आज जब कुछ कर दिखान का मौका आया है तब पीछे नही हटूगा मैं। लकिन एक बात पहले स थोडा साफ कर दें सरकार, जिसस बाद म चक्कर न पडे। बस इतना बता दें आप कि ज्यादा जरूरी क्या है—अशर्फी का बरामद होना, कि अशर्फी का असली होना ?'

अब इतनी छोटी सी बात म कोटपाल साहब को भला क्या दुविधा होती ! उन्होने सरकारी नीति बखान दी, "जरूरी है अशर्फी बरामद होना। जो बरामद होगी, वह असली ता होगी ही !

चीफ साहब सब समझ गये, इसलिए कागजी तफतीश करने चल पडे।

□

कोई साधारण सासारिक जन से सबधित मामला होता, ता तफतीश थोडा पुराने ढर्रे पर चलती, पर यह तो था खास देवलोक के धमराज के घर मे चोरी का मामला। ऊचे की बात ठहरी, तफतीश भी बडे लिहाज सकोच के साथ सम्मानपूवक चली। अब धमराज के बगले के भीतर तो झींगुर तेलचट्टा तक स पूछताछ की मुमानियत थी इसलिए सारी तफतीश कोटपाली म ही चली। यानी तफतीश हुई असगति अलकार से मडित।

चीफ साहब ज्ञानी थे, सुलझे हुए थे, इतना तो वे बात सुनकर ही समझ गए थे कि अशर्फी किसी घर के नौकर चाकर ने ही इधर उधर कर दी है, पर तफतीश तो कर नही सकते थे। आखिर अब करें तो क्या करें ?

उन्होंने फौरन पकड बुलवाया शहर के सबसे बडे दादा को। आते ही उसक गाल पर वह झन्नाटेदार हाथ धरा कि गाल पर नदियो-पहाडो के मानचित्र बन गये। दादा ने हाथ पकड लिया चीफ साहब का। उन्हे न्याय का रास्ता न छोडने को उत्साहित करते हुए बोला, 'अब एसी अधेर ता मत्युलोक तक मे नही है साहब। माहवारी दस्तूरी पचीस तारीख तक पहुँचाने की बात थी, आप आज पाच दिन पहले स ही मारपीट पर उतर आये ! ऐसी क्या गलती पड गई हम सबका से ! '

'क्या नाम साले मारपीट नही, अभी तो मैं डालूगा डडा तेरे हलक मे ! तुम लोगो को साले हजार बार समझा दिया कि जो करनी हो मडी बाजार मे करो, पब्लिक म करो, मगर तुम लोग मारे लाभ के सीधे राजमहल मे घुसे चले जा रहे हो। अधे हो गये हो साले, सिविल लाइस म ही हाथ फिरा दिया ! आज मैं एक एक की चमडी छील दूगा। दुलिया न बिगाड दिया तुम्हार तो अपने असली बाप का पैदा नही !"

कहते वहत दस पाच हाथ और धरे उन्होन।

"अरे, तो पूरी बात ता बताओ पहले। हो क्या गया सिविल लाइस मे, कुछ पता तो चले ! अगर किसी नौसिखिय ने वहा कोइ वारदात कर दी है, तो मैं अभी पकडकर लाता हू साले को। कुछ जानें समझें तभी तो हमारा पौरुष चले !" दादा बोला।

"क्या नाम साले, धमराज क घर से पूजावाली अशर्फी चोरी हो गयी और तुम साले वडे पुजारी के बाप बनकर पूछ रह हो कि क्या हुआ ! अब ऐसी मस्ती चढी है तुम लोगो को कि सरकारी अफसरो पर हाथ फेरने लगे ! क्या नाम साले, मेमसाहब धमराज सत ठान कोपभवन मे पडी हैं, कि बिना अशर्फी मिले खाये पियेंगी नही, इसलिए एक घट के अदर अदर अशर्फी मय चोर के हाजिर करो लाकर, वर्ना मुझे शरीफ आदमी मत समझना तुम। एक एक का करम फोड के रख दूगा !"

दादा सब समझ गया। चलते-चलते बोला 'जब एक घटे की कोई शत नहीं है चीफ साहब, दस वीस मिनट कम-ज्यादा लग सकते हैं। अशर्फी आ जायेगी आपकी, मय चोर के। इतनी छोटी सी बात के लिए गाली गलौज करना आपको शोभा नही देता। आखिर हमारी भी तो कोई इज्जत है।"

चाद सूरज की बात हो तो टल जाये, पर दादा की बात कैसे टले ! उसने इलाके के सारे छुटभैया को इकट्ठा कर साफ साफ कह दिया, "तुम लोग साले खास सिविल लाइस स धमराज की अशर्फी उडा लाये। आधे घटे मे मय चोर के अशर्फी आ जाये मेरे पास, वर्ना एक को भी जिंदा नही छोडूगा ! मैं चीफ साहब से वायदा कर के आया हूँ। खाली नही जानी चाहिये मेरी बात। आपस मे तय कर लो और जैसे भी हो अशर्फी लेकर आओ। वर्ना, जैस कल्लू और भूरे गायब हो गये थे, वैसे तुम सब भी एक एक करके गायब हो जाओगे दुनिया से।"

फिर हुई छुटभैयो की आमसभा। इतना तो खैर अधे को भी दीख रहा था कि न मिली अशर्फी तो सारे छुटभैया का काम धधा बद, बाल बच्चे मरे भूखो ! जान की जोखिम ऊपर से। लेकिन असली अशर्फी थी असली के पास, छुटभैयो को कैसे मिले !

सच्ची लगन से खोजा जिसने, उसे परमात्मा मिल जाता है। अशर्फी अम्मा

चीज क्या है! आखिरकार मिल गई अशर्फी। एक चोर भी मिल गया, इस शर्त पर कि जितने दिन वह जेल काटे, उतने दिन हजार रुपये महीने के हिसाब से मिलते रहें उसके घरवालों को छुटभयों की तरफ से तनख्वाह।

और इस तरह उधर असली तो पड़ा पड़ा सोता रहा सराय में और इधर नकली की माया से अशर्फी हो गई बरामद। उनकी कोटपालों से फोन उड़े, मंत्री सुन को मंत्री को, राजा को। फिर मारे पान हँसते खिलखिलाते वापस लौटे धर्मराज के पास कि लीजिए श्रीमान! मिल गई आपकी अशर्फी, पकड़ा गया चोर।

फिर फाइल भवानी की पूजा हुई। कागज महाराज का पेट भरा गया। अशर्फी की सुपुर्दगी दी गयी धर्मराज को। गाजे बाजे के साथ अशर्फी पूजन हुआ। सबसाहबों ने खूब ताड़ी चाय पी। कन्याओं ने लाई खील, देवताओं ने फूल, नाजानकारों ने मोती और जानकारों ने आँसू बरसाये।

उधर दिन अब बर्खास्त मंत्री के दबदबे सा ढल रहा था।

□

असली अभी सो रहा था। नकली ने उसे जगाकर कहा, "सुन बे, तू असली समझकर जिसे उठा लाया था वह अशर्फी बिल्कुल नकली है। असली तो बरामद हो गयी है और ठाठ से पुज रही है। मेरी न माने तो ले ये पढ़, लोकल अखबारों के साध्य संस्करण।

असली ने अखबार पढ़े। चोर, अशर्फी और चीफ साहब के फोटो देखे। अब उसे काटो तो खून नहीं। उसने टेंट से निकालकर देखा, अशर्फी उसी के पास थी। फिर कहाँ से बरामद हो गयी असली अशर्फी? उसने नकली से कहा, अभी एक दिन और रुक भाई। मैं इस अशर्फी को वहीं रखे आता हूँ, सवेरे अपने आप असली नकली का फैसला हो जायगा।

नकली मान गया। असली रात में चुपचाप अशर्फी को जहाँ से लाया था, वहीं रख आया नकली अशर्फी के पास।

अगले दिन फिर हाहाकार। फोन उड़े, वनपाखी उड़े। धर्मराज ने फिर रिपोर्ट की। कोटपाल ने चीफ साहब को बुलाकर कहा, "चक्कर पड़ गया! मुझे लगता है, वह साली अशर्फी वहीं कहीं आसपास खो गयी थी, अब फिर मिल गयी है बताओ अब क्या हो?'

चीफ साहब चिंतित हुए। बोले अब कुछ नहीं हो सकता साहब! चोर पकड़ा गया, माल बरामद हो गया, माल सुपुर्दगी हो गयी। अब तो सरकार हमारी बरामद अशर्फी ही असली है!"

तो फिर मैं इस दूसरी अशर्फी का क्या करूँ?"

"करना क्या है सरकार, तफ्तीश कीजिए आप और इस नतीजे पर पहुंच जाइये कि बाद वाली अशर्फी नकली है, प्लाटेड है।"

हुई, जमकर तफ्तीश हुई। साफ पता चल गया कि बाद वाली अशर्फी नकली है, जिसे किसी ने शरारतन जान बूझकर गुमराह करने की नीयत से रखा है। लेकिन कागजी सबूत में किया क्या तो असली और क्या नकली इसलिए कागजी सबूत जुटाने अशर्फी भेज दी गयी– सरकारी जांचशाला।

सबसे असली अशर्फी सरकारी जांचशाला में पड़े पड़े सड़ रही है और नकली अशर्फी ठाठ से पुज रही है। असली सराय में पड़ा है इस उम्मीद में कि कभी जांच पूरी होगी और सिद्ध हो जायेगा कि उसकी वाली अशर्फी ही असली है। नकली नगर नगर, डगर डगर लोगों को बताता घूम रहा है कि वह है असली और वह जो सराय में मुंह छिपाए पड़ा है कुछ नहीं का फूल।

एक और विनयपत्रिका

आजकल परीक्षाओ के दिन हैं। पर्चे एक के बाद एक युद्ध क्षेत्र म सिपाहियो की तरह गिरते जा रहे हैं । कापियां हर साल की भांति आनी शुरू हो गई हैं पर अब उनके सुडौल स्वरूप का देखकर वह खुशी नही होती जो उनके आने पर पहले होती थी । अब तो मन कहता है । देखा, वह फिर आ गई। पिछले साल तो बडी मुश्किल से उसे निष्कासित किया था अब की बार उसने अपनी छोटी बहिन को भेज दिया । मुझे भी यह रामास करते-करते करीब दो युग बीत गये । कोई अखड दीप थोडे ही हूँ ! आखिर हर बात की कोई सीमा होती है।

खैर, एक बात जो वह बरसो से सनातन धर्म की तरह चली आ रही है वह है मेरे नाम की पाती । पता नही कहाँ कहाँ से व्यथित मन अपनी दारुण कथायें मेरे पास लिख भेजते हैं । यदि मैं इन सबका सकलन प्रकाशित करा देता तो ही एक महाभारत तैयार हो जाता, पर मैंने सोचा कि कागज के अकाल मे यह दुष्कृत्य होगा । अत कापियां म प्राप्त उन पातियो का भावानुवाद मैंने एक पत्र मे ही नत्थी किया । उनकी पाती—विद्यार्थी का परीक्षा को प्रेम पत्र—का एक उदभट उदाहरण प्रस्तुत है—

श्रध्येय प्रात स्मरणीय गुरुदेव,

साष्टांग दडवत प्रणाम !

पत्र लिखने से पूव यह जीवनमुक्त आपके व्यक्तित्व को परीक्षा भवन के मरघटी वातावरण मे विभिन्न रूपो म देख रहा है । एक तरग आकर कहती है कि आप करुणानिधि हैं दूसरी उतने वेग से आकर कहती है कि आप कोपपुज हैं । अत मे यह सोचकर कि 'कहो कौन दर जाऊँ' यह अपनी हृदय विदारक राम कहानी आपके समक्ष प्रेषित कर रहा हूँ । मेरे अन्त स्थल मे आप दीनबधु, कृपानिधान, दुखहर्ता, सुखकर्ता, हैं जिनकी किंचित कृपा मात्र से 'पगु गिरि लघै' और रक चलै सिर छत्र धराई' ।

गुरुदेव ! आप मेरे से मीलो दूर किसी महानगर के आलीशान प्रकोष्ठ मे बैठे होंगे । मुझे यह किंचित भी मालूम नही कि यह पत्र किस दिशा की ओर

जायेगा। हाँ, इससे मेरे मन की दिशा का पता आपको अवश्य लग जायेगा। परीक्षा पर आक्रमण करते करते बरसो बीत गये हैं परन्तु गगा गहन से गहनतम होती जा रही है। प्रत्येक वर्ष मेरे माता पिता के लिए भारी बनता जा रहा है, मेरी शादी हर वर्ष स्थगित करनी पड रही है।

पर, गुरुदेव परीक्षा न तो अपनी टांग अगद की तरह अडा रखी है। आगे बढने नही देती। न खुदा ही मिला न विसाले सनम। आखिरकार हमारे पास एक ही अन्तिम अस्त्र बचता है कुतुबमीनार से भूतल का चुबन। यह मेरा अन्तिम प्रयास है, यदि असफल रहा, तो कुतुबमीनार से सफल प्रयास करूँगा।

मैं मानता हूँ, मैने वह नही पढा जो आपने पूछा है, या या कहिये आपने वह नही पूछा जो मैंने पढा है। बात एक ही है। आखिर कहाँ तक पढा जाय? जब भी कोई अध्यापक मुझे परीक्षा का स्मरण कराता तो मेरी स्वच्छन्द आत्मा वही ही कुठित होती। मैं सोचता, परीक्षा के जाल, इन्द्रजाल से मुक्त होना ही सबसे बडी मुक्ति है। जब भी किसी अखबार में 'परीक्षा प्रणाली में परिवर्तन' पर लेख आता या राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, शिक्षामन्त्री व शिक्षाविदो के भाषणो का सक्षिप्त ब्यौरा छपता मैं उन्हे मन ही मन बडा साधुवाद देता। मैं कल्पना करता कि जब देश के समस्त महान व्यक्ति इस प्रणाली में परिवर्तन चाहते हैं तो परिवर्तन अवश्यम्भावी है। मैं उन्हे शत शत प्रणाम करता यह सोच कर कि जिन लोगो ने देश को अंग्रेजो की दासता से मुक्त कराया वे अवश्य ही इस नई पीढी को भी परीक्षा की अंग्रेजी प्रणाली से मुक्त करायेंगे। पर, वही ढाक के तीन पात।

गुरुदेव! मेरी ये बातें आपको बडी बेतुकी लग रही होगी। छोटे मुह बडी बात लक्ष्मण परशुराम सवाद। अब तो बात करते करते मुह भी पक गया। आप सोचेंगे कि कोई बहुत ही निकृष्ट और निलज्ज व्यक्ति इन पक्तियो के पीछे बोल रहा है। पर यह सत्य नही है। मैं अत्यन्त ही कुलीन भावुक व सभ्य मानव हूँ। केवल निगोडी परीक्षा ने मुझे बेकार कर दिया है। सामने रखे हुए पर्चे के प्रश्न मेरे दिल पर पेपर वेट की तरह रखे हुए हैं। उनका क्या करूँ? उन्हें मैं यथास्थान ही छोड देता हूँ।

फिर भी मान मर्यादा का पालन करते हुए, कुछ शकुन के रूप में, मैंने अपनी लेखनी को चलाया है। थोडे को ही आप बहुत मानना। आप कृपया अपनी गरिमा बनाये रखें। महान व्यक्ति दूसरो के लिये ही जीवित रहते हैं। आप मेरी मदद कर पूरी नई पीढी की मदद करेंगे। एकत्व का बहुत्व मे समा जाना ही धर्म है। यही बौद्ध धर्म है यही आधुनिक समाजवाद और यही चिरतन चितन की चिता।

राम और कृष्ण ने कुछ राक्षसो का वध करके अपने लिए विशेषणो की

माला गुथवा ली, पर, गुरुदेव, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, यदि आप परीक्षा उन्मूलन अभियान मे सक्रिय हो जायें तो आपका यह चरणदास आपको समस्त ससार मे अभिनदनीय करवा देगा। यदि आप परीक्षा की आक्रामक मुद्रा को नष्ट करने म कुछ पहल करें तो पीडित मानव आपकी चरण रज को अपने मस्तक पर लगायेगा। यदि आप नरसिंह बन इस चतुर्मुखी पिशाचिनी का वध कर दें तो आपका चित्र ससार के प्रत्येक घर मे प्रतिष्ठित हो जायगा। आप इससे मेरी व मेरी समकक्ष पीढी की अन्तर्वेदना का अनुमान लगा सकते हैं और यह भी अन्दाज लगा सकते हैं कि यह पीढी किस तत्परता से 'धर्मसस्थापनार्थाय' के वाहक की प्रतीक्षा कर रही है।

गुरुदेव! यदि परीक्षा मुझे अहिल्या बना देती तो मैं शाति से किसी वन मे पडा रहता परन्तु उसने मुझे सुदामा बना दिया। एक विषय को सभालता हूँ तो दूसरा जभाई लेने लेने लगता है, उसको शात करता हूँ तो तीसरा चिल्ला उठता है, उसको दुग्धपान कराता हूँ तो अन्य चीत्कार करने लगता है। मेरा रोदन तो अरण्यरोदन मात्र होकर रह गया है! मेरी ब्राह्मण पोटली के अक्षत चारो ओर के छिद्रो से बिखर रहे हैं। मैं असमर्थ हूँ इन्हे सभालने में।

ऐसी मानसिक दशा मे यदि मुझे अपने देश के ऐतिहासिक भवनो का स्मरण हो भी आये तो क्या गुनाह? कुतुबमीनार ही अपना अन्तिम शरणस्थल है। ताज महल बनाने की बात तो आप मेरा नाम परिणाम घोषित होने के दूसरे दिन अखबारो मे न पढ लें, तब सोचना। कुतुबमीनार जिन्दाबाद! ताजमहल मुर्दाबाद!!

हां, पत्र के अन्तिम छोर पर पहुँच कर एक रहस्य उद्घाटित कर देता हूँ। इस पष्ठ से चौथे पष्ठ पर यानी इस कापी के मध्य मे प्रसाद रूप मे मुद्राराक्षस बैठा है। उसे आप 'पुष्पम् पत्रम फलम् तोयम' समझ कर स्वीकार करें। श्रीमान् 'अबकी बार मोहि पार उतारो'।

जेहि विधि नाथ होई हित मोरा,
करो सो वेगि दास मैं तोरा।

आपका चरण सेवक,
जीवनमुक्त

ऐसे पत्रो को पाकर बडे बडे लोगो के कलेजे दहल जाते हैं। मेरा भी नन्हा कलेजा बहुत बार दहला परन्तु झटके खाकर वह भी पक्का हो गया। पत्र हमारे दिल को पिघलाने के लिए तो आ जाते हैं पर उनके उत्तर किस तरह भेजे जायें? यह अहम् प्रश्न सदा बना रहता है। फिर यह सोचा कि बडे लोग हर एक पत्र का उत्तर नही देते। वे अपना उत्तर अखबार में छपवा देते हैं। मुझे भी यह टकनीक अत्यन्त सभ्य लगा। मैंने यही किया।

विद्यार्थियो से प्राप्त प्रेम पत्रो का सामूहिक सावजनिक उत्तर मैंने इस प्रकार लिख भेजा। मेरे परीक्षा खडित शिष्य,

श्रद्धा व निष्ठा से लिखी हुई तुम्हारी विनयपत्रिका मैंने बडी लगन व ध्यान से पढी। उसे पढ कर मेरा रोम-रोम हर्षित हो उठा। कई दिनो से कापिया जाचते जाचते मैं भी ऊब चुका था। तुम्हारे पत्र ने एकदम नये रक्त का सचार कर दिया। जडता टूटी और वातावरण मे नूतनता का प्रसार हुआ।

तुम्हारा पत्र मैंने एक नही अनेको बार पढा और जितनी बार पढा उतना ही अधिक आनद प्राप्त हुआ। उसमे साहित्य के अनेक रसो का समावेश कर तुमने अपनी कली का बहुत ऊँचा उठाया। लावण्यता का शाश्वत गुण तुम्हारे पत्र म मौजूद है। मुझे आशा है कि विश्व के पत्र लेखन साहित्य मे उसे उच्च स्थान प्राप्त होगा।

कुतुब प्रेमी! परीक्षा भवन के मरघटी वातावरण मे तुम्हारा मन शाखामृग की तरह उछल कूद करता रहा और इसी मूड मे तुम अपनी कापी के मध्य भाग स कुतुबमीनार की ऊँचाइयो तक हो आये, प्रशसनीय है। तुम्हारे पास तो तीन घटे का समय था और वह समय तुमने सिरसका के जगल के शेर की तरह मुक्तावस्था मे काटा पर तु पीडित पुत्र! मैं तो नियमा के पिजरे मे आवद्ध एक चिडिया हू। चहक सकता हूँ, गुरा नही सकता। अवधि की परिधि स पीडित कोई मानव इस भूतल पर हो सकता है तो वह मैं ही हूँ। मैं थोडा लिखन का आदी नहीं हूँ पर तु मेरे पास तुम्हारे समय का छठा भाग भी नही है। अत तुम थोडे को बहुत मानना।

हां, एक बात मैं तुम्हारे कुतुबमीनार के अटूट प्रेम के सबध मे अवश्य कहना चाहूँगा। महाकवि केशवदास ने लिखा है

अकाल मत्यु सो मरे
अनेक नरक सो परे।

ऐसा न हो आकाश से गिरा और खजूर मे लटका।

विवेक विभूषित वाचाल!

तुमने परीक्षा प्रणाली के उ मूलन मे मुझे सहायक बनने का जो आह्वान किया, इसके लिये कृतज्ञ हूँ। मैं स्वय भी इस दासता से अत्यत पीडित हूँ। मैं ही नही और भी अनेक अध्यापक इस आ दोलन म तुम्हारा साथ दे सकते हैं यदि तुम सत्याग्रह कर समाज का नेतत्व करो। सदा से ही—और आजकल विशेष रूप से—कमक्षेत्र की बागडोर युवा पीढी के पास हो रही है। गुरु विश्वामित्र ने राम को प्रशिक्षण दिया और उनमे बाण चलवाये, अरस्तू ने सिकदर को प्रशिक्षित किया और उसे चक्रवर्ती सम्राट बनने को प्रोत्साहित किया। मैं भी इस शुभ काय मे तुम्हे आगे आने की प्रेरणा देता हूँ। अभी अवसर है मत चूके चौहान।

छिद्रान्वेषी !

मुझे आश्चर्य है कि तुमने मुद्रा सुदामा के मूल रोग का अनुमान लगाकर मुद्राराक्षस दशनाथ भेजा, उपकृत हू। पर मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ, विश्व विद्यालय के दफ्तर व पोस्ट आफिस की टक्करो मे वह चकनाचूर हो गया। हा फिर भी मैंने उसे स्पर्श कर यथासभव प्रौढ रोमास का अनुभव किया।

अन्त मे मैं तुम्हारे उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हुआ तुम्हारी प्रलयनिशा मे विचारार्थ कबीर की दो सधुक्कडी पक्तिया लिख भेज रहा हूँ

काहे री नलिनी तू कुमलानी,
तेरे ही नालि सरोवर पानी।

तुम्हारी आशाओ का प्रहरी,
तुम्हारा गुरु
स्थितप्रज्ञ

सहज कृपन सन सुन्दर नीती

जब जब 'मानस' मे 'सुन्दरकाण्ड के 'सहज कृपन सन सुदर नीती'—कथन पर मेरा ध्यान जाता है, तब तब मुझे व्यास का यह कथन याद आ जाता है—कृपणेन समोदाता भुवि कोऽपि न विद्यते। अनश्नन्नेव वित्तानि य परेभ्य प्रयच्छति।' (इस पृथ्वी पर कृपण के समान कोई दाता नही है, जो भूखे रहकर भी अपना धन दूसरे के लिये देता है)। और मैं सोचने लगता हूँ कि व्यास ने जिसे इतना ऊचा चढाया उसे ही तुलसीदास ने इतना नीचा क्यो गिराया? क्या तुलसीदास बेचारे कृपण के अद्वितीय त्याग को नही पहचान सके? दान देना बहुत सहज नही है और भूखे रहकर देना तो और भी कठिन है। जब शास्त्र भी भूखे को पाप करने की ढील देते हैं (बुभुक्षितो हि कि न करोति पापम्) तब भी जो व्यक्ति पाप न करके दान करे उसे सुन्दर नीति के सर्वथा अयोग्य ठहरा देना तुलसी जैसे सत के लिये ही शोभनीय हो सकता है!

तुलसी आदर्शवादी थे। जीवन भर ऐसी ही बातें कहते रहे और विरोध सहते रहे। 'ढोल गवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताडन के अधिकारी' कह कर विश्व की आधी जनसख्या को विरोधी बना लिया। कृपणो को उसी सास मे छेड दिया जिसमे शठो, ममतालुओ, लोभियो व क्रोधियो को छेडा। असज्जनो और असन्तो को पहले ही खरी खोटी सुना चुके थे। अप्रिय सत्य को बोलकर उन्होंने न जाने कितनो को अप्रसन्न कर लिया और लिख डाला बडा-सा पुथवकड। कोई उसे क्यो पढे? खरी-खोटी सुनने के लिये। चाहे जैसा तीसमारखा हो, कही-न कही उनकी पकड मे आ ही जाएगा और तब वे सुनाने मे नही चूकेंगे, सारी शेखी झाड देंगे। और बडे मजे की बात यह है कि 'मानस' की समाप्ति पर पहुचते ही कह देंगे—

> कामिहि नारि पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
> तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम॥

अपने आराध्य की भक्ति करने जा रहे हैं और आदर्श सामने रखते हैं कामी का, लोभी का। एक ओर उन्हें इतना गिराया और दूसरी ओर उन्हें इतना चढ़ाया। कही एकरूपता है ही नही। और पाठको का यह हाल कि

सुनते रहेंगे पर पढेंगे उ हें ही । सुस्त वप भर मे गानस पढेंगे, कम सुस्त मास मे और एकनिप्ठ उसे नौ दिन म पूरी कर लेंगे तथा कुछ उसके पाठ के नैरतय पर ही सतोप कर लेंगे। न जान कैसा सम्मोहन है ! रामनाम का ही होता तो इतनी भापाओ म अनुवाद क्यो होते ?

बेचारा कृपण इतना ही तो करता है कि न वह स्वय खाता है और न दूसरे को खाने देता है। वह खाये और दुनिया को न खाने दे तब तो उस पर अगुली उठाई जा सकती है। 'जीओ और जीन दो' का झडा उठाने वाले कई मिल जावेंगे और खाओ और खाने दो के समथक भी भरे पडे हैं, पर न खाओ और न खान खा। दो' के सीधे सच्चे नीति निर्देशक सिद्धा त को कोई मानने को तैयार नही होता है। 'आत्मानि प्रतिकलानि परेपा न समाचरेत' का इतनी कठोरता से पालन और फिर भी उनके प्रति इतनी घणा। दुनिया के छदम-व्यवहार से कोसो दूर रहने से जि हे पूज्य बनना चाहिए वे निंदनीय बन गये ! कुछ समझ म नही आता।

अठारह पुराणो के कवि ने जिस सहानुभूति से कृपणो को समझा था वह बाद के कवियो के मन मे उत्पन्न ही नही हुई । उनका अकुठित व्यक्तित्व था। बात को सही सतुलित रूप म समझने की क्षमता थी । बाद के कवियो को तो उनके बौनेपन ने उबरने ही नही दिया। उ ह सवत्र कलुप ही कलुप दिखाई दिया। यह ओछापन है। न पूरी शिक्षा व दीक्षा कलम पकडी। जो कुछ लिख दिया।

यह ओछापन है। न पूरी शिक्षा व दीक्षा, कलम पकडी, जो कुछ लिख दिया कविता बन गई। रसदशा तक नही पहुच पाये तो विचार कविता, अकविता का नारा उछाल दिया, अलकारो का अध्ययन नही, तो बिम्बो पर उतर आये। छद ज्ञान नही तो गद्य के वाक्यो को मुद्रको के षडयन्त्र मे शामिल हो तोडकर लिख डाला। शुद्ध हि दी पर अधिकार नही तो अपनी अपनी बोलियो के शब्दो पर उतर आये, विदेशी शब्दो के पैब दो से नई शलवार बना डाली।

बात समझ मे आ गई। कवि कम जब रोटी रोजी से जुड गया होगा तब कोई निराश्रित कवि भूल से किसी ऐसे व्यक्ति के पास चला गया होगा जो जीवन की निरतरता मे विश्वास करता होगा और सोचता होगा कि इस जीवन का सचय अगले जन्म मे मिलेगा। अत उसके सामने पेट दिखाकर फैलाये हाथ खाली रह गय होगे और बस याचक बरस पडा होगा। गालिया दी होगी उठक पठक की होगी। पर इससे क्या, हारा याचक ही होगा। गालिया उसका बाल भी बाँका नही कर सकी होगी उठक पटक की खरोंचें उसके मनस्तोष को डग मगा न सकी होगी। तब हताश कवि उसे बदनाम करने पर उतर आया होगा। प्रशसा के पुन बाधने मे पहले से ही चतुर था। अब निंदा पर उतरकर कम थोडे रहा होगा। उधर कृपण को कवि की बिरादरी के व्यक्ति की इतनी बात

याद आ गई होगी कि निन्दकों को तो समीप रखना चाहिए। इससे उसका मनस्ताप दुगुना हो गया होगा। लक्ष्मी एवं सरस्वती की एक साथ उपासना करने का सुयोग उसे सहज ही मिल गया।

हाथी हाथी ही रहेगा और श्वान श्वान ही। इसके भौंकने से उसकी मस्ती में कोई अन्तर नहीं आता। पैसे की मस्ती अद्भुत मस्ती, जिस तक धतूरे (कनक) तक की मस्ती पहुँच नहीं सकती। सुरापान की मस्ती में झूमने वालों की मस्ती-चित्रण के तो अबार लग गये, पर पैसे की मस्ती की अदा ही अलग होती है। चाहे पैसा बालक के पास हो या जवान के पास अथवा बूढ़े के पास। बचपन में मुझे हाट के दिन एक पैसा मिलता था तब मेरा सीना तन जाता था और हाथ बार-बार जेब पर जाता रहता था। अपने बाल मित्रों की दृष्टि में मैं कितना महनीय बन जाता था। कृपण की इस आंतरिक प्रसन्नता तक कवि की दृष्टि कब पहुंची है? उसकी सतृष्ण दृष्टि में तो वह बौदा बनेगा ही और उसकी मजाक उड़ेगी ही।

जब शास्त्रकारों ने जीवन के चार पुरुषार्थ बतला दिये तब चयन की स्वतंत्रता सबके साथ कृपण को भी मिल गई। मुमुक्षु, धर्मध्वज, कामकामी की श्रेणी में अर्थकामी भी जा बैठा। कोई एक को वरेण्य माने व दूसरे को हेय, यह कैसी दृष्टि? दोनों नेत्रों में कौन श्रेष्ठ, कौन अश्रेष्ठ? विष्णु की चार भुजाओं में से कौनसी शुभ, कौन सी अशुभ? मुमुक्षुओं के पतन की अनेक कहानियाँ हैं, धर्मध्वजों के स्खलनों से इतिहास भरा पड़ा है, काम-कामियों में सहनाकिह इने गिने हैं, पर अर्थकामियों में भामाशाह एक दो ही मिलेंगे। अपना जीवन जाये, चला जाये, पर अपने वे औषध पर अपने प्राणप्यारे का नहीं [illegible]। पैरों की बिवाई घाव बन जाये, पर वे जूते नहीं पहनेंगे। [illegible] जायें, पर कर्त्तव्य की बलि वेदी पर अपने प्यारे को [illegible] चढ़ायेंगे और 'तजिय ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही' के [illegible] का निरन्तर जाप करते रहेंगे। खायेंगे ऐसा कि प्रभु जिस [illegible]। [illegible] वस्त्र पहनकर विटामिन 'डी' का सेवन [illegible]। उनकी निष्ठा एवं उनका तप धन्य है।

सहज कृपण अडिग होते हैं, [illegible] है। [illegible] परिचय एक असहज कृपण में था, [illegible] मुष्टिका पुत्रवधू को भिखारियों [illegible] सोचा था—दानी भी। [illegible] चूक गया। उसने [illegible], [illegible] वदन देखा भिखारियों [illegible] (अनेक रसिक [illegible]

पाये) और घर का आटा घुन गया। ऐसी भूल सहज कृपण कर ही नहीं सकता। उसकी अनन्य निष्ठा उसे अन्य किसी पुरुषार्थ की ओर देखने ही नही देती।

बिहारी का तो नही, पर मेरा परिचय एक सहज कृपण से है। उनकी पूँजी पर काल मार्क्स का ध्यान गया होता तो पूजी की उत्पत्ति के सिद्धान्त में उन्हें संशोधन करना पड़ता। वे भूमि एवं श्रम के अतिरिक्त कृपणता को भी मूल तत्त्व मान लेते। हाँ, तो वे सज्जन एक बार बिहारी के कृपण की भूल कर बैठे। एक दिन वे कह गये, 'शर्माजी, शीघ्र ही आप मेरे यहाँ भोजन करेंगे।" मैं उनके अहेतुकी (?) एवं अप्रत्याशित निमंत्रण से चिन्ता में पड़ गया, पर साथ ही अपने भाग्य को बार बार सराहने लगा और उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा जिस दिन उनका अप्राप्य अन्न बीज रूप म मेरे उदर मे पहुँच कर नई वृत्ति को अंकुरित करेगा। 'जैसा अन्न, तैसा मन' लोकोक्ति ने जिस आकुल प्रतीक्षा को जन्म दिया उसे बारह होलियाँ भी नहीं जला सकी हैं।

'पाप मूल अभिमान' से कोसों दूर रहना कृपणों को ही आता है। हम-आप तो अपने अभिमान की ऊँची कुर्सी पर बैठकर न तो किसी से बात करेंगे और न किसी से मिलेंगे जुलेंगे। अपने पड़ोसियों से जितना बेझिझक मेल मिलाप ये रखते हैं उतना परिवार सदस्य भी परस्पर नहीं रखते। वे चाय म पत्ती डालकर दूध और चीनी के लिए पडोसी के घर चले जायेंगे। चूल्हा जलाना है तो खाली माचिस म सीक उससे भरा लायेंगे। मेहमान अपने आये हैं, पर उनकी चाय पडोसी के घर रखेंगे। अपने धोबी को गये गम कोट के अभाव म पडोसी का बक्स खुलवा लेंगे। बाहर रहेंगे तो माचिस की डिबिया लेकर किसी सिगरेट व्यसनी को तत्काल सहायता पहुँचाने की तलाश मे रहेंगे। गाडी म चलेंगे तो अपने सहयात्री के बीवी बच्चों की सुख-सुविधाओं का प्रबन्ध करते और परिणाम मे उसके चाय-नाश्ते म हाथ बँटायेंगे। समाचार पत्र आपने खरीदा है, पर ये पहले पढकर वचन सेवा करने को तैयार रहेंगे। भद्र व्यवहार की अचकता इनमें मिलती है और वाणी की मिठास भी इनम ही। लोक व्यवहार मे इनकी वचन अदरिद्रता अनुकरणीय होती है।

बिना धन व्यय किये काम बनाना कृपणों को ही आता है। पैसे को उलीचकर तो मूर्ख भी काम करवा सकते हैं। यह तो धन की महिमा है व्यक्ति की नहीं। कृपण व्यक्ति के महत्त्व को अक्षुण्ण रखने का कायल होता है। अब तक देश की पचवर्षीय योजनाओं मे उलीचे गये पैसे ने व्यक्ति को कितना गिराया। यदि किसी कृपण के द्वारा इन योजनाओं का संचालन होता तो उसके साथ देश की प्रतिष्ठा भी बढ जाती।

सुना जाता है कि योगियों ने अपनी साधना को इतनी विकसित कर लिया था कि वे बिना खाये पिये वर्षों रह जाते थे। योगी प्राय जंगलों मे रहते थे

जहाँ प्रकृति उनकी ऐसी आवश्यकताओ की पूर्ति सहज ही कर देती थी। इसलिए उन्होने इसे अनुपयोगी समझकर भुला दिया। साधना के बीज मत्र के साथ ऐसी उपलब्धि भी गोपनीय बनी रही। अब सब कृपण की दृष्टि योग शोध पर लगी हुई है। यदि शोध मे सफलता मिल जाती है तो समस्त कृपणो मे आनन्द छा जायेगा और तब यह देश प्रथम श्रेणी का निर्यात करने वाला बन जायेगा।

सुदर नीति के नाम पर जो छल पनपे हैं उनमे कृपण कभी नही फसे हैं। किसी नीतिकार ने कह दिया—

पानी बाढो नाव मे घर मे बाढो दाम।
दोनो हाथ उलीचिए यह सतन को काम।

पर कृपण को नीतिकार की बात जमी नही। नाव मे बढा हुआ जल उसे ले डूबेगा, पर घर म बढा हुआ धन आज तक किसको ले डूबा है ? टाटा बिडला के घर धन बढ गया और वे लोक प्रसिद्धि पा गये। यदि आय का स्रोत बनते ही उमे आसन्न खतरा समझ कर उलीचने लग जाते तो भूखो मर जाते कोपीन लगा लेते। भारतेन्दु हरिश्चद्र ने ऐसी ही नासमझी की थी। उन्हे उसका फल भुगतना पडा। उनके अतिम दिन बुरे बीते। शराबी पर इस कथन का प्रभाव हो गया। उसने धन उलीचना आरभ कर दिया और गदी नाली मे गर्दन लटकाकर दम तोड दिया।

कृपण की दृष्टि को समझने की कोशिश किसी ने की ही नही। यदि उसकी आखो से स्वण का सौन्दय एव नोटो का रूपलावण्य तुलसी देख लेते तो 'राम के नही, दाम के भक्त बन जाते। इस देश म तो लोक का परलोक पर न्यौछावर कर दने की होड सी लगी रही। परलोक बनाने की लालसा मे सुदरिया शवो के साथ जल मरी परलोक बनाने क लिए घरो को चौपट करके सन्यासियो ने जगलो को भर दिया और बौद्धो ने विहारो को। गृहस्थो के विरोध मे जिहाद बोल दिया गया। बेचारे गहस्थो ने हार मानकर उनकी उल्टी-सीधी बातो को ज्यो का त्यो स्वीकार कर लिया। यम नियम समाज व्यवहार मे भी आ धमके। अपरिग्रह का पाठ गहस्थो को खुलकर पढाया गया। दूसरी ओर यह भी कहा गया कि ईश्वर इतना भर दीजिए कि कुटुम्ब की उदर पूर्ति हो जावे और मैं भी भूखा न मरूँ तथा साधु भी भूखा न जाव—

साइ इतना दीजिये जामे कुटुम समाय।
मैं भी भूखा न मरू साधु न भूखा जाय।

तब कुछ न कुछ तो बचाकर रखना ही पडेगा। किसी दुर्वासा से पाला पड जाये, तो खैर नही। परिग्रह है तो अतिथि सेवा भी हो सकेगी। वह न जाने कब आ धमके—अतिथि जो ठहरा—धन चाहिए गृहस्थ बनकर रहने के लिए। उसी से

मोक्ष मिलेगा। अत याज्ञवल्क्य ने चुपके स कह दिया—

"यायागतधन सत्त्वज्ञान निष्ठो तिथिप्रिय
श्राद्धकृत सत्यवादी च गृहस्थो ऽपि विमुच्यते।

आखिर, शास्त्रों को भी लौटकर कृपण की नीति की आर आना पड़ा।

उस दिन भारत सरकार से जब उसकी नीति को व्यापक समथन मिला तो वह उछल पडा। उसका अभियान सरकारी अभियान बन गया। पैसा बचाने की बात डाकघरो, दीवारो, रेडियो, समाचार पत्रो म भर गई। तब कृपणा को घुटन सी अनुभव होने लगी। वह नेता बनकर अनुगामी कैसे बनें? अपनी प्रतिध्वनि मे भी छलना दीख पडी। सरकार ने पैसा मांगा उसने उसे और मजबूती से पकड लिया। 5 10 प्रतिशत पर उसे कौन दे? इतना तो उसके पास पडा सोना अनायास ही उग आयेगा। दो चार प्रतिशत मासिक हो तो बात गले उतरने वाली है। वह भी परिचितो को अहसान, निमत्रण, दडवत व ब्याज की कमाई की अपेक्षा के साथ। पर सरकार ने उसकी नीति को ऊपर ऊपर से ही पकडा। गहराई से पकडती तो स्व पर व्यवहार म अतर न आता। जनता को कृपणता सिखाई एव स्वय बदखच बन गई। उसकी नीति थी कथनी व करनी मे एकरूपता, पर सरकार 'पर उपदेश कुशल' ही बनी रही। इसलिए दिवालिया बन गई। अपनी साख खो बैठी। सबका पैसा निकलवाकर घर म और बाहर हाथ फैलाती रही और अपनी पगडी उछलवाती रही।

अधूरे लेख को पुन आरभ करने का उपक्रम जुटा ही रहा था कि मेरा एक मित्र कमरे मे आ धमका और बलपूवक लिखित अश को छीनकर पढ गया। इससे पूर्व कि मैं कुछ कहूँ वह कहने लगा, 'बेचारे कृपण को तुलसी ने तो लम्बे हाथों लिया ही है, व्यासजी ने भी उसे कब बख्शा था और अब तुम उसके पक्षधर बनकर उसके पीछे पड गये। मैं अपने लेख पर व्यक्त इस अनामत्रित प्रतिक्रिया के बाद उसे आगे बढाने का उत्साह खो बैठा!

काकमुखी राजनीति

विविधता मे ही मानवी मूल्य अपने नये आयाम खोजते हैं। साधारण से असाधारण व असाधारण से साधारण के बीच तक की दौड म जो सरल विरल अनुभव मिलते हैं वे ही जीवन-जगत् के इन्द्रधनुषी कोणो को विस्तार दत हैं। त्रेतायुग मे सम्पूण साधुवादिता ने जीवन के बहुरगी कोणो को चख डाला था। ऋषि-मुनियो के पास भी देने लायक कुछ न बचा था। एकरसता के कुहास मे प्रतियोगिता की दिशाएँ लुप्त थी। व्यक्तित्व की पहिचान अलग से स्थापित नही हो पाती थी। जो जहा था बस वही था, जैसा था, बस वैसा ही था। शाति-अनुशासन की ठडी गुलामी म लोग जल रहे थे।

धरावासी अपनी व्यथा कथा लेकर नारद के पास पहुँचे। नारद ने उन्हे कष्ट निवारण का सहज सरल उपाय प्राप्त करने काक भुशुडी के पास भेज दिया। भुशुडी का ध्यानमग्न देख लोगो न करबद्ध हो अरदास की—'प्रभो, अखियाँ खोलो और जीवन्मुक्ति के उपाय बोलो। शाति के बिना हमारी शाति अधूरी है। जीवन एकरस है और हम विवश हैं। हर आदमी को स्वर्ग की सीढी सीधी दिखायी देने लगी है।

काकभुशुडी पखुडो की मोटाई का नाप ले अपनी आयत पुतली को उघाडा व लोगो के मूड को निहारा। फिर आश्वस्त होकर बोले—भक्तो, कष्ट-विमोचन के लिए मैं अपनी काक-कला के कुछ गुर तुम्हे देता हूँ। वैसे तो अन्य कारोबारो म भी इनके लिए प्रवेश-द्वार खुला रहेगा, पर राजनीति की जाजम पर इन्हे परम पद प्राप्त होगा। सत्ता की माया के सप्तावरण मे साधु भी स्वादी बन जाएगा। जो मूल्यदेयी कोणो पर मडरा नही सकेगा, वह कस्तूरी मृग की तरह सुगध को तलाशता ही रहेगा।

भुशुडी उन्हे काक ज्ञान का पुलिदा थमाकर अन्तर्धान हो गए। इस सिद्धि के बाद मानवी ज्ञान के अभाव के वोक्यूम को काक ज्ञान से भरा जाने लगा। सदियो से जमे अडियल साधुवादी मूल्यो को आसानी स उखाडना सभव भी न था। इसलिए त्रेता के शेष काल मे इन सूत्रो को केवल रस्म अदायगी के लिए ही प्रयोग किया जाने लगा। द्वापर मे वे घाट घाट का पानी पीकर फलते रहे।

कलिकाल के जन्म के साथ तो परम्परागत प्रतिमान ही बदल गये और मानवी कलाओं का कायाकल्प हो गया।

आज कायनीति के शामियाने के नीचे राजनीति गरम ठंडी साँसें ले रही है। इसलिए राजनीति के नये क्षितिजों (नौसिखियाओं) के ज्ञान-बोध के लिए काक बोध के नीति निदेशक सिद्धान्तों का उल्लेख जरूरी है। तदनुसार विरोधियों की उल्टी तस्वीर रखना और स्वयं को शॉट कॉर्नर से बचाना इसकी ओसनस नीति का प्रतीक है। विरोधियों की उल्टी सैकी पढ़ना और हर बात शीर्षासन लगाकर देखना इसकी अभिचार क्रिया का अंग है। खोट खेलना व ओट लेना इसके द्वंद्व मनन का मूल मंत्र है। चित पिट चिता इसकी कूट-नीति का प्रमुख छंद है। जनता के मूड के सजग पारखी बनना व उसकी बुद्धि शुद्धि के उपाय ढूंढना इसका 'चरैवेति' सिद्धान्त है। सर्वजनहिताय की भावना तो काक-कला का प्रक्षिप्त अंश है जिसे ठलुए ऋषियों ने मनचीता पूरा करने के लिए गढ़ लिया है। इन उपायों की परम सिद्धि के लिए सत्ता शास्त्री में अतिरिक्त साहस की आवश्यकता है—प्रदूषण से न डरो। वैसे ही वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि दूषण और जाने कितने ही खरदूषण पीछे पड़े हैं गोमुखी जनता के। वह अपनी सर्वसह प्रकृति के कारण राजनैतिक प्रदूषण को भी झेल लेगी। दल के जिस टापू पर खड़े हों, वहाँ शोधयित्सु की तरह देखना चाहिए कि भविष्य उज्ज्वल है या अनिर्णयात्मकता के कुहासे में अस्पष्ट। यदि वहाँ बाजीगर बाज ही बाजी मारने वाले हों तो विकल्प की तलाश में द्वीपान्तर गमन करना चाहिए। सोते में भी खड़े रहो, जगत में भी खड़े रहो, क्योंकि खड़े कान, खड़ी आँखें व खड़ी टाँगें ही काक कला का 'उत्तिष्ठत जाग्रत' मंत्र है। पुच्छग्राहिता या शृंगग्राहिता के गुणों को अपनाकर व चोंच गति का प्रयोग कर सत्ता की कामधेनु को बढ़ने के लिए मजबूर करने में ही समस्याओं की वैतरणी पार की जा सकती है।

यदि आज की राजनीति का रूपांकन किया जाय तो वह काकमुखी सिद्ध होगी। काक विद्या में जो ग्लेमर है, वह अन्यत्र नहीं। जनतंत्र तो केवल वाद में ही है, विवाद में तो नेतातंत्र है। जिस बालक की जन्म कुंडली में कौआ चोंच मार जाता है, उसे नेतापद का अग्रिम मांगलिक पुरस्कार मिल जाता है। राजनीति के वाद चंचुओं की जमात में ऐसे ही नेता कलाबूती खा रहे हैं जिनके लिए काक विद्या का माहात्म्य उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि वणिक वृत्ति के लिए लक्ष्मी माहात्म्य।

प्रयोजनेन विना मूढोऽपि न प्रवर्तते—सत्ता भी अर्थवती है। अर्थवती है तभी तो मंगलमुखी है। उसको हथियाने के लिए चोंच मंथन जरूरी है। इससे अमरपद रूप में सदानंदी कुर्सी यश के लिए वातावरण व यथार्थ की

जवड के लिए भुवनमोहिनी लक्ष्मी का दाक्षिण्य भाव रहता है।

स्वाभिमान की गुदड़ी ओढ़न म क्या रखा है जी ? सूखी भक्ति म क्या धरा है जी ? ठटपट रीझने वाले भगवान की सा धरती के प्रदूषणा स खतरा है। मानी को चाहिए कि वह अपन स्वाभिमान का कचुल उतार कर नेतापद की हाजरी म सरकडे सा खड़ा रहे, क्योंकि य स्समणि हैं। ध्यानी को चाहिए कि इनके चरणारविन्दो म साष्टांग समर्पित हो जाय, क्योंकि य रोटी के सिरजनहार हैं। वाणी की शोभा तो ठकुरसुहाती म है, क्योंकि य नौकरी के पट्टेदार हैं। यदि कोरे स्वाभिमान म आगपास का रहोगे तो जीवन रेहडी बन जाएगा और पेट वाटर सूका मैदान !

मानव-दुलभ काक योनि म जन्म लने वाला कौआ राजनेताओं का अजागुरू है। वह प्रवृत्ति माग का हामी है। यही प्रवृत्ति माग राजनीति का युगधम है। इस प्रवृत्ति-माग की सीमा स्वार्थ के प्रकोष्ठ म झांकती है। भक्ष्य अभक्ष्य का प्रश्न तो शुकशाभी है, काकशोभी नहीं। नीति अनीति की भेद व्याख्या तो निवृत्ति मार्गियो के लिए है। 'प्रवृत्ति' यानी प्रसाद म वृत्ति, 'निवृत्ति' यानी निष्काम वृत्ति। इसलिए राजनीति के प्रवृत्ति मार्गी अपनी परम सिद्धि के लिए औसनस नीति (उच्च लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए हीन काय) व अभिचार क्रिया (मारण, सम्मोहन आदि के तान्त्रिक प्रयोग) का आश्रय लेत हैं। युगधम न पढ पाने वाले निष्काम मार्गियो का तो आत्म शांति पान के लिए हिमालय की कन्दराओ म चला जाना चाहिए, बशर्ते कि वहाँ भोगमार्गियो को वापी या लीज का पट्टा न मिला हो।

कौआ अपन काक ज्ञान का पहला अध्याय डिम्बावस्था म ही सीख लेता है, अंडे स बात प्रवेश की स्थिति तो उसका दीक्षान्त संस्कार है। उम्र की ढलान ही अनुभव का कुतुबनुमा नहीं दिलाती—ऊँट बूढा हुआ, पर मूतना भी न आया। युवा-दशन तो पौराणिक जड दशन के सामन यूरिया के फलित ज्योतिष को ही सम्यक् दशन मानता है। युवा नेताओ की बी पी तो लीजिएगा आप और पाइयेगा आप कि उनम महत्त्वाकांक्षाओ का ज्वर किसी इच्छायली ज्वार से कम नहीं। 'बड कौए बूढे भये, छोट सुभान अल्लाह' की सूक्ति को चरितार्थ करते हुए ये युवा तुक कुर्सी की मछली को फँसाने के लिए कल बल छल के त्रिमुखी काँटे का प्रयोग करत हैं। लेकिन राजनीति के बूढे प्रेमियों का भी मोह भग हुआ है क्या ? वे तो जन्मजात अभिनेता हैं—उम्र का चौथा प्रहर भी उनके लिए जीवन का ब्राह्म मुहूत है। राजनीति गजी बन जा दन, लेकिन बिन लगाकर संन्यासाश्रम की अवस्था को यो धकेला जा सकता है। लाग कहत हैं सो ठीक ही कहते होंगे—जवानी म खाया बुढ़ाप म काम आता है। इसलिए क्या बुरा, यदि जवानी के ये रसभोगी बुढ़ाप म भी ठीक ढर बन रहें। इनके हाथ

कूद म भी एक रिदम है, डाइ मारा की कला है। इसकी कला की इयत्ता तो 'पुनपुन कुर्सी लभत' मे ही है। कुर्सी ही शिव सकल्प है, शिव सकल्प में ही आत्म शोध है। कुर्सी उनके लिए कुरसी है जिन्हें "पोता ऊपर पीठ दिखा देती है, 'सुरसी' उनके लिए है जिनके भौतिक भार को शिरोधाय कर लेती है। कुर्सी घाट की शिव यात्रा म ही यदि किसी की शव यात्रा निकल जाय तो वह लोककथा की तरह चर्चित हो जाएगा। कोई चेयर सिंह था, जो कुर्सी के लिए जिया और कुर्सी के लिए मरा। सत्ता के ये सूफी कुर्सी को ही अपनी प्रेमिका मानते हैं। समय का हीरामन तोता इन्हें पदमावती गुर ख़ब घुटा देता है।

काकाश्रु किसने देखे हैं ? न किसी ने इन खड़ेश्वर महाराजा को आँख मे सुरमा डालते देखा है। नित्यानंदी नेता की आँख म भी जालिम लोशन लगाने की जरूरत नहीं, क्योंकि उनकी आँखें हर एंगिल से जालिम हैं। वे सप्लीमेंट्री आँखो मे दूरियाँ पास बुला लेते हैं और ओरिजिनल आँखों से दूरियाँ तब खिंचे चले जाते हैं। अपनी जमावट के लिए विरोधियों को उल्टी सैंकी पड़ना ही तो काकाक्षिगोलक न्याय है। फिरकी की तरह घूमने वाली ये आँखें जब अपने कुछ उल्का कण दूसरी आँखों म डाल देती हैं तब उनके ग्लेशियर की आब ही सुखा डालती है। जब प्रेमाधिक्य से इन आँखों की लेंस दूसरी आँखों तक बढ़ जाती है तो उनका हरित दर्शन भाव ही सूखाग्रस्त हो जाता है। ये कभी आकाशमुखी उग्रता, कभी पातालमुखी नम्रता और कभी गोपन म टेढ़े टाइप करती हुई स्वार्थों की गोल म गेंद डालने को आतुर हो उठती हैं।

राजनीति कोई फकीरों की जमात तो है नहीं, उसमे भी कई सद्गृहस्थ हैं। भला घर की खाट खड़ी करके भी कोई दशोद्धार किया जा सकता है ? सच्चा गृहस्थ वही हो सकता है जो परमोपाय द्वारा अपनी पीढ़ियों की समस्याओं की वैतरणी से पार उतार देता है। वह जानता है कि दौलत आते समय सिर नीचा किये आती है और जाते समय दुलत्ती झाड़ जाती है। आतिथ्य सत्कार तो हमारी वासी परम्परा है, इस पर पानी फिर जाने पर हमारे पास अपना रहेगा क्या ? इसी लोकधर्म का अनुसरण कर कइ दौलू दौलतराम बन गये। ऐसे कैसे जाने कस-कैस हो गये ! वह बखूबी जानता है कि इहलोक से सिमट जाने के बाद श्रद्धांजलि मे जुड़े लोगों के हाथ शीघ्र ही उसका आसन ग्रहण करने वाले नये कथावाचक के आगे जुड़ जाएँगे। गत सो गत। इस चलाचली के खेल मे भाई भतीजे ही तो उसके नाम की धर्मध्वजा थामे रहेंगे।

कौओं की क्या जात ! जैसी बात, वैसी जात। बनारस गये तो बनारसी दास इटारसी गये तो इटारसीदास। उड़ गये तो रमते राम, जम गये तो जमते राम। यही तो काक कला का बाग प्रसारण न्याय है। कौए प्यास बुझाने के लिए कच्चे घर की तलाश कर ही लेते हैं। भक्तों के लिए आवागमन से छुटकारा

मोक्ष-उपाय हो सकता है, पर राजप्रिय पडा के लिए तो आवागमन ही मुक्ति का मुहावरा है। कई वर्षों से किसी दल म पद घिसाई करने वाले मठाधीश ही जब आरक्षण की तलाश म दूसरे दलो के द्वारपालो स सिफारिशें पहुँचाने लगते हैं तब चेले चमटा की बात ही क्या ? किसी दल मे यदि उनकी कलदारी आँख को आबदार पानी न मिल तो अपना प्रतिबिम्ब देखने अन्यत्र गमन निषिद्ध या आचारसंहिता का अपहरण कैसे हो सकता है ? चमरौधे घिस जाने पर बदले जा सकते हैं, इसका मतलब यह तो नही है कि एडियाँ ही बदल दी जाएँ। ऐसे उठाऊ चूल्हो की तो रौप्य तुला होनी चाहिए, जो किसी दल विशेष की फ्रेम स बाहर झाँकने का दुस्साहस तो कर लेते हैं। उनकी क्या कहिए जिनकी सूइयाँ दसो दिशाओ की यात्रा कर पुन उसी कोण मे फिट हो जाती हैं—उडि जहाज को पछी पुनि जहाज पे आवे।

माच म बुलबुल, मई मे परवाना बन जाने वाले एग [illegible] अब एक दल मे 'काक रेस' होती है तो दिल का बँटवारा, दूसरे दल मे [illegible] (गुप्त अभियान) होती है तो दल का बँटवारा। इस [illegible] और अव्यय भाव से बन जाते हैं दलदल। कौआ उडन [illegible]। इधर के अतिथि आयेराम गयेश्याम भी अपने द्वीपान्तर गमन [illegible] ही पीछे पलटते हैं। कुछ तो अपने आकाओं का [illegible] नौका नयन समझ बैठते हैं—महाजनो येन [illegible]। [illegible] भी हैं, जो जरा स चदन तिलक स ही [illegible] तरह लव खम खिच जाते हैं। आप इन [illegible] हैं, पर ये ही पार्टी की फसल का [illegible]। [illegible] जिस दल मे जितने जोडी पाँव अधिक [illegible] दलो के मूल नक्षत्र म पमनरिणी [illegible] चाहे कौआ छाप ! जिधर [illegible] दर्शन भी उसी ओर [illegible]।

है। उस दईमारी को क्या पता आज दिल्ली पास है पर गुलाल पर तो कौए के अपशकुनी पंजे गड़ गये। कभी अबीर गुलाल पर तो कभी गुलाल जमा है मन! दुखाड़िया जनता शायद यही समझती है कि हल्न पर हस्ताक्षर करके ही वह सुखाड़िया बन सकती है।

सूरज चाहे विषुवत् रेखा पर हो चाहे कर्क रेखा पर कोयल का स्वभाव परिवर्तन की जाते नहीं जाता। वह आत्मकल्याणी है, अकेले ही धीरे धीरे खाना पसन्द करती है। कावन्डर के सामने अपनी सपुत्ता सम्पूर्ण उपलब्धियों का सामूहिक नाश करने के लिए अपने कावा-कावियों को न्योत देता है। यह है काक विद्या का काकोदयी सिद्धान्त। 'फिर तू भी खा, मैं भी खाऊं' वाली वफर डिनर शुरू हो जाती है। भले ही आज के सन्दर्भ में आप सर्वोदय को स्वोदय कह लें, पर बताइये मौका मिलने पर भेंट को कौन नहीं मूंडता? सच मच टच ही तो भौतिक ऊर्जा व मानसिक तृप्ति का साधन है।

पशुओं में हव्वा, पक्षियों में कौआ और नरों में नौआ परले सिरे के बुद्धिमान माने जाते हैं। जैसे हौआ की कतार में सब धुरन्धर खिलाड़ी, कौआ की पंचायत में सब पंच और नौओं की बारात में सब ठाकुर ही ठाकुर होते हैं, वैसे ही निर्दलियों की जमात में सब अलगोजिए होते हैं। नौए का उस्तरा दाढ़ी का शक-सबत नहीं देखता वह तो चेहरा की आव उतार कर स्पन्द कमाना भर जानता है। हम चौड़े, बाजार संकरा कहने वाले ये अधरपट निर्दली भी उल्टा उस्तरा चलाना खूब जानते हैं। राजनीति में राशियों का चक्कर नहीं। सिंह, मकर, मिथुन सब अपनी क्षमतानुसार एक ही घाट पर पानी पीते हैं। समूह में रहकर भी काकश स्वतन्त्र रहना काक कौशल का स्वाधीन संस्करण है, वैसे ही दलों की भीड़ में अपने व्यक्ति को जीवित रखना निर्दलियों की परंपरा है। वे तो उन्मुक्त मारुत मंडल में चैन की वंशी बजाने में ही अपनी सकल विद्या का सार समझते हैं।

राजनीति में कावस पहले भी थे, आज भी हैं। ये चार्वाक के त्रिमुखी दर्शन 'खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ' को चहुँमुखी बनाने में योग देते हैं— शोर करो, क्योंकि शोर में ही जोर है। कौआ का दावा सार्वभौमिक होता है। कभी प्रतिज्ञा के मूड में राजघाट पर मंडराने लगते हैं, कभी धोने के मूड में धोबी घाट पर। राजनीति में भी मरघटिया शांति नहीं, जिन्दादिलों की शांति चाहिए। जिन्दादिलों की शांति तो धड़कन के साथ उठक पटक में ही निहित है।

राजनीति के ये रस गंधर्व अपनी जन्मदाता जनता के निरानन्द कोणों से प्रकाश वर्ष दूर रहते हैं। जनता के गढ़े हुए ये नेता अमूर्त रहते हैं। जनता तो मूर्त है, इसीलिए मूर्ति की तरह सब कुछ देखती रहती है। आजाद तो हम तब थे, जबकि हम गुलाम थे। आज तो हम अपने ही लोगों द्वारा बंदी हैं।

पहले पराया जूता खोला अवश्य था, पर आज तो अपना ही जूता हम काट रहा है।

चालाकी मे अपना सानी न रखन वाला कौआ भी कोमलकामी खूबसूरत ठगी के चक्कर म आ जाते हैं। मैडम कोयल जितनी सहज सरल है, उतनी ही चालाक भी। उसे काकसुता नाम यो ही नही दिया गया। वह अपने अडे कौए के घोसले म देती है और वह परायी आग को अपना समझ गले लगाये रहता है। जब ये अडे फूटकर भिनस्वराघात प्रस्तुत करते हैं तब उनका काक ज्ञान शू य हो जाता है। राजनीति मे भी प्रियसभाषिणी कोयल दूसरे खेमो मे अडे देती है। जब चुनाव की गर्मी म ये फूटने लगत हैं तब उस दल के काकमणिशास्त्री भी मुग्धमणिशास्त्री बन जाते हैं। ये अडे उनके लिए 'बेड एग' (बेकाम के आदमी) सिद्ध होते है।

राजनीति के रैगिग मे अच्छे से अच्छे शब्द भी मसखरी के पात्र बन जात हैं। शब्द तो मर्यादित हैं, पर अथ यायावर बन जात है। हमारे नता पेश आब (पानी पश) की बात करते है और अथवेत्ता उस पशाब समझ बठते है। वे मुहतर की बात करते हैं, क्रिटिक उस मूत्र समझ बठत हैं। मसखरी कोई तस्करी तो है नही, जिस पर सरकारी छापे की सभावना हो। आज देश से गोरे वायसराय गयेराम बन गए, पर देशी वायसराय कलाबूती खा रह है। काक मसखरी दुरति-परति छिन जात। कौआ खुश मूड म नाचता है, बाकी अदा मे अपने अक्श को निहारता है, कभी बाज के साथ भी चोच मसखरी कर धरती के गुरुत्वाकपण म बँध जाता है। अच्छा हुआ जो उसके नाक नही हुई, नही तो ऐनक लगाकर मसखरी कर बैठता। इधर जनता को शिकायतो का उदगीत गाने का मूल अधिकार है, उधर उनको भी आश्वासनमुखी मसखरी करन का अधिकार है। मसखरो के अभाव म राजनीति के काकबध्या बन जाने का डर है। ये मसखरे राजनीति की सलवटो को बिन पानी, साबुन बिना साफ करत है। हालांकि मसखरी की उम्र दाढी बढने से कटने तक स ज्यादा नही हाती, फिर भी वह कभी कभी ऐसा रग बरपा देती है कि मन पर अयाचित मस्स उभर आते हैं और अच्छे खास चेहरे भी काटून स लगने लगत है। राजशाही मे तो मसखरी को दरबारी मान ही मिलता था, पर नेताशाही मे तो इसे राष्ट्रीय मान मिल रहा है।

कौओ की दाढी पेट मे होती है, पुरुषो की चेहरो पर। लाडी, गाडी दाढी तो बढने मे ही अच्छी लगती है। इन दाढिया का भी ट्रेड मार्का होता है—भगु दाढी, द्रोण दाढी, मीरजाफरी दाढी आदि। कुछ दाढियो का तिलिस्म बढ रहा होता है। जब इनका विसजन गगाघाट पर होता है तब ये आध्यात्मिक, जब खेमा मे होता है तब गुप्तचर, जब सेलून पर कटती है तब सावजनिक और जब

किसी माँग को लेकर बढ़ती है तब हड़ताली दाढ़ी बन जाती है। ये महर्षि अपनी दाढ़ियों का मुंडन चाहे ग्यारह तोपो की सलामी के साथ धराधाम पर करायें, चाहे चाँद पर पर गाला पर चाँद के क्रेटर की छाप लिए जाता कब तक इन वृद्ध बच्चो की मति को अपनी सहमति की छाप लगाती रहेगी? केवल दाढी म उलझे हुए फकीर पर तो खुदा भी मेहरबान नहीं होता—

गो ने दर्द वस्ले
मा दर्वेश मादा
ठायमा मशगूल
रीश स्वैश मांद।

अय मूसा, यह सही है कि वह फकीर हमारे दशन के बिना चैन नहीं पाता, लेकिन दीदार कैसे हो सकता है क्योंकि उसका दिल बार बार दाढी म उलझ जाता है। गनीमत है कि हमार राजनता मुंडा की बात नहीं करते, नहीं तो देश म सवतोभद्र की चेतना जाग्रत हो सकती है।

कौए आत्माराम हैं। आत्मारामी के लिए रामनामी ओढ़न की जरूरत नहीं। राजनीति मे भी ऐसे आत्मारामा का गृह प्रवेश हो चुका है। विज्ञान म ज्यों ज्यों दूरियाँ कम पडती जा रही है त्यों-त्यों आत्मा के मीटर का माप भी कम पडता जा रहा है। जो आत्मा घोघे की खाल मे रहकर विराट की ओर झाकती है वह असन्तुलन पैदा कर देती है। वह तो 'स्व' के कगारो के बीच लहर दोल की तरह चचल हानी चाहिये। स्थिर फ्रेम म जड़ता है, चचल कठ पुतली म रसोद्रेक है। रस प्रसूता वाणी के साथ उछलने वाली तोंद का फूलना किसी हद तक ठीक है। भावुकता की लम्बाई गज फीट मे नहीं, वरन् तोंद के घेरे से मापी जाती है। कुछ भोवर-गणेश उनकी तोंद परिक्रमा मे ही स्वय को कृताथ समझ लेते हैं।

कहीं कौए भी खेती करते दखे गये हैं क्या? वे तो परान्नजीवी हैं। राज नीति म भी जब हल लगाने वाले हाथ मौजूद हो तब कौन पसीने की बदबूदार छिछली नदी म उतरना चाहेगा? प्रतिभा पलायन हो तो होने दो, क्योंकि प्रतिभाओ का हस कहलाने का क्या अधिकार? यदि हस हैं भी तो कौओ के शासन मे उनका क्या काम?

कौओ का कठ कभी बैठा नहीं दखा गया। काकरोर तो बारहमासी होती है। राजनीति भी तो वाकचालो की वाकपीठ ही तो है। ससद म छन्द अलाप, खेमो मे बन्द अलाप और जनता म स्वच्छद अलाप! काकरोर तब तक चलती है जब तक जनता की सहनशील प्रकृति का पारा नामल रहे। इसी बात को दाँतो से पकड कर चाणक्य ने कहा था—'प्रकृतिकोपो हि सवकोपेभ्यो महीयान' अर्थात् प्रजा का कोप सबसे भयकर हाता है। हुकूमत जनता के मत से ही

चलती है। यदि जनता मत न दे तो ये नेता हुकू-हुकू करते फिरें।

'काक के भाग सराहिये जु ले गयो कान्ह के हाथ से माखन रोटी।' यदि जनता बजरबटटू हो तो ये बजरबटटू कौए उसके हाथ का निवाला तक छीन ले जाते हैं। जनता जब तक नही जानती तब तक जनता है और जब जाग जाती है तब जनादन बन जाती है। मीठी वाणी को लोग जजमानो की भाषा न मानकर लम्पट भाषा मानते हैं। इस गुर को कठाग्र करके ही कौए कठफाड रोर कर रहे हैं। राजनीति के युयुत्सु शिविरो म भी काव-काव का टेप रिकाड बार बार बज रहा है। बहरे तो बहरे ही रहेगे चाहे हियरिंग ऐड लगाकर सुनें, चाह कान उठाकर।

> बैठि सगुन मनावति माता,
>
> कब आवहि मेरो लाल राम घर, कहहु काग फुरि वाता।

भारत माता भी पक्ष विपक्षाघात से पीडित है। उसकी आकाशी आखें इतनी रोयी कि धरती पर बाढ ही आ गयी। सूखी तो इतनी सूख गयी कि धरती पर सूखा भी पड गया। वह भी आज शगुन मना रही है कि कब ये कौए देश की सीमा से बाहर किसी निजन टापू पर चले जाएँगे और कब रामराज्य होगा ?

भोजन और भजन

भारत मे वैदिक काल से ही भोजन की अपार महिमा रही है। यद्यपि आम हिन्दुस्तानी की तरह मैं वेदो से अनभिज्ञ ही हू तथापि आश्वस्त जरूर हू कि एक दिन ऐसे सूक्त पडितो की सहायता मे जरूर ढूढ निकालूगा जो मेरी बात का समथन करते हा। क्योकि जब पडित लोगो न बीसवी सदी की सारी वैज्ञानिक उपलब्धिया वेदो मे ढूढ निकाली हैं तो भाजन जसा साधारण विषय ढूँढ निकालना तो उनके लिए बायें हाथ का खेल होगा। मेरी धमनियो मे भी वही भारतीय रक्त प्रवाहित हो रहा है जो वायुयान जेट, परमाणु बम तक को वेद सम्मत कहन म सकोच नही करता। जिस मज के कारण वेद पढे नही हैं तो भी मैं बात बात मे वेद की दुहाई देता रहता हूँ। उसी मजबरी के कारण मैं यह कह रहा हूँ कि भोजन की महिमा वैदिक काल स ही प्रकट है।

वेदो के बाद के ग्रन्थो म तो भोजन के अनेक प्रसग उपलब्ध हैं जिन्हें मैंने एक शोधार्थी की तरह इकट्ठा कर लिया है। जैसे दुर्वासा ऋषि जब अपने शिष्यो के साथ द्रौपदी के मेहमान बने तो कृष्ण को उन सबके भोजन की व्यवस्था करने के लिए अन्न भण्डार खुलवाना पडा। कृष्ण स्वय गोपियो का मक्खन चुराकर खाते थे। भोजन के मामले मे कृष्ण सचमुच बहुत तेज थे। उन्हान बचपन मे जो लत पाल ली वह बडे होने पर भी नही छूटी। विदुर के यहाँ केले के छिलके ही चट कर गए। और तो और सुदामा के कच्चे चावलो तक का भोजन कर लिया। राम भी कम पेटू नही थे। वनवास क समय अनेक ऋषियो के यहा भाजन करने पधार गए। यहा तक कि शबरी के झूठे बेरो को भी उन्होने नही छोडा। गणेशजी आज तक हर कैलेण्डर मे लडडू जीमते नजर आते हैं। बुद्ध भगवान न तो आम्रपाली जैसी वेश्या का योता भी नहीं छोडा। हमारे देवताओ और ऋषियो ने भी जब भोजन करने मे कमी नही रखी तब दादा परदादाओ ने भी किस रूप म कमी दिखलाई होगी? आज जब देश मे अन्न का अभाव है और चारो ओर भूख ही भूख नजर आती है तो लोगो को भरपेट भोजन न मिलने का कारण साफ नजर आ जाता है। इतने हजार वर्षों मे जब देवता और पूवज लोग भोजन करते रहे हैं तो एक दिन तो उसे समाप्त

होना ही था। बूंद बूंद से घडा भरता है तो बूंद बूंद से खाली भी हो जाता है। हमारे यहां अन्न पैदा करने से ज्यादा भोजन की ओर ध्यान दिया गया इसीसे शस्य श्यामला धरती होते हुए भी हमे विदेशी अनाज पर निर्भर रहना पडता है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम आज पैदा हुए। कृष्ण के समय पैदा हुए होते तो हमे मक्खन तक खाने को मिलता। आज खाने को तो क्या लगाने तक के लिए मक्खन उपलब्ध नही है।

भूखा आदमी चिन्तन ही कर सकता है सो मैं भी भोजन चिन्तन कर रहा हूँ। सोचने पर यही बात मन मे आई कि आखिर लोग इतना अधिक भोजन कर उसे पचाते कैसे होगे। कई दिनो तक उन लोगो के अपच की चिन्ता मुझे सताती रही। एक दिन रास्ते पर चलते हुए एक वैद्यजी की दुकान के बोर्ड पर नजर पडी जिसे देखकर मैं चौंक उठा। लिखा था "लक्कड हजम, पत्थर हजम चूरन।' तुरन्त यह विचार मन म आया कि उन भोजन भट्टो के हाजमे का रहस्य यही सूत्र है। सभी लोग डटकर भोजन करते होंगे और इस चूरन से उन्हें पचा लेते होगे। किन्तु यह विचार अधिक समय तक टिका नही रह सका। सोचा आदमी तो रोटी खाता है उसे लक्कड या पत्थर खाने की नौबत कहाँ आती है ? अलबत्ता राशन के गेहुओ मे माईला के साथ पत्थर जरूर मिला रहता है। अत पत्थर हजम—माईलो हजम तो फिर भी समझ म आता है। इसी प्रकार अकाल पडने पर घास की रोटियाँ खाने की खबरें भी अखबारों मे छपती रहती है। पर इससे क्या ? घास की रोटियाँ तो [illegible] खानी पडती है। राणा प्रताप को भी घास की रोटियाँ खानी पडी थीं। इसलिए पत्थर या घास हजम की बात होती तो मैं नहीं चौंकता क्योंकि भारतीय पेट पत्थर या घास-फूस को तो आसानी मे पचा लेता है। मगर लोगो को आज तक लकडी खाने की नौबत नहीं आई है। [illegible] लोग बात बात मे दूसरो के लक्कड करने की दुहाई जरूर देते है पर मैंने किसी को लक्कड खाते न तो देखा न सुना है और न पढ़ा है। फिर [illegible] भी मैं वैद्यजी के इस विज्ञापन का कोई अर्थ नहीं समझ सका तो वैद्यजी से ही इसका मतलब पूछने उनके पास चला गया।

मेरी बात सुनकर वैद्यजी ने पहले तो मेरी नासमझी पर मुस्कराकर एक ठहाका लगाया। फिर कहा—'आप [illegible] आदमी नजर आते हैं तभी लक्कड या पत्थर खाने पर आश्चर्य कर रहे हैं। भाई साहब! आज लोग इनसे भी ज्यादा विस्मयकारी और [illegible] चीजें खा रहे हैं। [illegible] सीमेंट खा रहा है तो कोई परमिट पर [illegible] जीपों की जीपें खा रहा है तो कोई [illegible] राशन। [illegible] पण खाने वाले भी [illegible]। [illegible]

तरह सोने के बिस्कुट तो लोग बात की बात मे खा जाते हैं। बाबू लोग स्टेशनरी खा जाते हैं तो अफसर लोग फरनीचर। इसलिए जरा आखें खोलकर चारो तरफ देखिये कि लोग-बाग क्या क्या चीजें नही खा रहे हैं। लोगो मे मानो खाने की होड सी लगी हुई है। खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है। किसी को एक चीज खाते देखकर दूसरे की भूख जाग पडती है और वह भी कोई चीज खाने लगता है। जो लोग खाना थोडा सा ठण्डा या बेस्वाद होते ही बीवी से लड पडते हैं वे भी इन चीजो को खाते समय ठण्डा गरम, स्वाद बेस्वाद कुछ नही देखते हैं। बस लपालप खाने मे लगे रहते हैं। ऐसी अभक्ष्य चीजें खाने पर उनमे सुस्ती आलस्य के रूप मे रोगो के चिह्न दिखायी देने शुरू हो जाते हैं। फिर किसी को अपच हो जाती है, किसी को मन्दाग्नि और किसी को आफरा हो जाता है। ऐसे मरीजो के लिए मेरा यह चूरन रामबाण दवा है। मेरे इस नुस्खे से वे सब कुछ हजम कर जाते हैं।' उन्होने बात समाप्त करते हुए कहा—'लीजिये आप भी यह चूरन खाइये।' मैं बोला—'नही मेरा हाजमा एकदम दुरस्त है क्योंकि मैं तो सिर्फ रोटी खाता हू।'

उनकी बातो से पूरी तरह प्रभावित होते हुए भी मैं अपने अहं को एक साधारण से वैद्य के सामने डूबने नही देना चाहता था। एक आदर्श इन्टेलेक्चुअल की तरह उनसे हार मानकर हथियार नही डालना चाहता था। इसलिए अपनी विद्वत्ता झाडते हुए बोला—वैद्यजी, आपकी बात शतप्रतिशत सही होते हुए भी दोषपूर्ण है। आपकी बातो से लक्कड हजम की बात सिद्ध नही होती। आपने जब बोर्ड पर लक्कड हजम लिख रखा है तो आपके पास उचित तर्क भी होना चाहिए कि लोग लक्कड कैसे खाते हैं कि उसे पचाने के लिए वे आपका चूरन खाएँ। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि स्वतत्र भारत म कोई व्यक्ति लकडी या लक्कड नही खाता। क्योकि हमारे यहाँ लकडी से अब सिर्फ एक चीज बनती है और वह है कुर्सी। देश मे कुर्सियो की इतनी अधिक माँग है कि उसकी पूर्ति नही हो पा रही है। किसी भी दफ्तर म चले जाइये वहाँ लोग कुर्सियो के लिए छीना झपटी करते नजर आयेंगे। हर कोई बडी से बडी कुर्सी हडप लेना चाहता है। कुल मिलाकर देश मे लकडी से सिर्फ कुर्सी बनती है, और उस पर सभी की निगाह टिकी रहती है। अत जिस चीज पर सभी लोगों की निगाह हो उसे कोई चोड़े धाडे खा नहीं सकता। यानि आजकल लकडी या लक्कड कोई नहीं खाता अस्तु लक्कड हजम की बात उपयुक्त नहीं है। यदि आप लिखना ही चाहते हैं तो या लिखिये—"रिश्वत-हजम, गबन-हजम चूरन। हमारे इस नायाब चूरन स सभी प्रकार की रिश्वत और गबन हजम हो जाते हैं। इसको गबन करने वाले व्यक्ति को सस्पेंशन, इनकम टैक्स, सोशल टैक्स जैसे भयानक रोगों से मुक्ति मिल जाती है। यह किसी प्रकार की चिन्ता-परेशानी से मुक्त

होकर पूरी तरह स्वस्थ और नीरोग हो जाता है।" वैद्यजी ने मेरी बात मान ली और मैं आत्मतुष्ट होकर वहाँ स चल पड़ा।

रास्ते म मेरा ध्यान पुन वैद्यजी की बातो पर चला गया। मन मे सोचा सचमुच लोग आजकल क्या-क्या नही खा रह है। मानो भोजन रोग की महामारी ही फैल गई है। सभी की भूख जाग्रत हो गई है। एक व्यक्ति को कुछ खाता देख उसकी छूत स दूसरे का मन भी ललचाने लगता है। उसके भी मुह म पानी भर आता है और वह भी लार टपकाने लगता है। इस प्रकार एक खरबूजे को देखकर दूसरा खरबूजा भी रग बदलन लगता है। हर एक को अपनी थाली मे रूखी सूखी राटिया नजर आती हैं तो दूसरे की थाली म घी ही घी दिखाई देता है। फिर वह भी अपनी थाली मे भी घी देखन के लिए दौड धूप करने लगता है। इस प्रकार दूसरा व्यक्ति भी भाग दौडकर अपना हिसाब बैठा लेता है। पहले वह बेड टी की आदत पालता है, फिर नाश्ता करने की लत पड जाती है और तीसरी अवस्था म भूख बढ जाने पर वह भी लच और डिनर लेने लगता है। उसके प्रयासो से भोजन की एक नई 'डिश' आविष्कृत हो जाती है। आज की दुनिया के इन नये व्यजनो की यदि लिस्ट बनाई जाय तो वह बडे से-बडे होटल के 'मीनू' से भी बडी हो जाती है। इन नये भोजन के व्यजना को खाने के तरीके भी बदल गए हैं। पहले की तरह अब कोई व्यक्ति घर मे चौके मे बैठकर भोजन नही करता। अब तो सभी लोग बफे लेते हैं। सारा देश ही बफे की सजी हुई टेबिल है जिस पर भूखे भेडिये की तरह लोग टूटे पड रहे हैं और प्रेमपूर्वक भोजन प्राप्त कर रहे हैं।

पुराने समय मे मथुरा या बनारस के चौबे, पडित लाग भोजन भट्ट के रूप मे मशहूर थ। ये लोग विवाह, ओसर मोसर श्राद्धपक्ष इत्यादि भोजन प्रतियोगिताओ मे पेशेवर खिलाडियो की तरह उतरते थे और अनक नए कीर्तिमान स्थापित करते थे। कोई सौ लड्डू खा जाता था तो कोई पाच सात सेर हलुआ। इसी प्रकार कोई रबडी के कुल्हड के-कुल्हड हडप कर जाता था। ऐसे धुरधर खावको की चर्चा आम जनता श्रद्धापूर्वक किया करती थी। आज वे भोजन प्रतियोगिताए बन्द हो चुकी हैं क्योकि उनके आयोजको क हौसले पस्त हो चुके हैं। लेकिन भोजन भट्टो ने हार नही मानी है। इन्होने बदली हुई परिस्थितियो मे नई भोज प्रतियोगिताए ढूढ ली हैं। ओसर मोसर श्राद्ध आदि के भोजन बन्द हो गए हैं तो क्या, उनकी जगह देश के नवनिर्माण मे बनने वाले कारखानों, इण्डस्ट्रियो व्यापार आदि ने ले ली है। चारा ओर नहरें, बाँध, तालाब, सडकें आदि निर्मित हो रहे है। ये ही वे नयी प्रतियोगिताएँ हैं जिनमे आज के भोजन भट्ट पूरी तैयारी के साथ उतरते हैं और पूरी तरह तप्त होकर उठते हैं। आम जनता अब पुराने खावक पडो, पडितो के भोजन की चर्चा

भूलकर अब उन अफसरो, नेताओ की बातें करती है जो सौ दो सौ बोरी सीमेंट खा जाते है, पचासो टन इस्पात जीम जाते हैं। भृगु ऋषि ने तीन चुल्लू मे सारे समुद्र का पान कर लिया था। भारत मे समुद्र निर्माण की कोई योजना अभी तक नही बनी है जिससे यह पता लग सके कि आज भी सारा समुद्र पी जाने वाले लोग मौजूद हैं या नही पर कुओ, तालाबो, नहरों को पी जाने वाले अनेक घुर घर ठेकेदार, इजीनियर, अफसर मौजूद हैं। ये लोग इनका सारा का-सारा पानी पी जाते हैं वह भी इतनी सफाई से कि उनमे पानी की एक बूद तक पीछे नही बचती। केवल सरकारी फाइलो से ही पता चलता है कि उन स्थानो पर कभी कुए-तालाव आदि खुदवाए गए थे।

आज के ये भोजनभट्ट जब पगत मे बैठते हैं तो पूरी तरह तृप्त होकर ही उठते हैं। भूखी जनता इस पगत के चारो ओर कौओं की तरह कांव कांव करने लगती है। परन्तु पगत के रहते जनता का बस नही चलता। पुलिस आती है और लाठी चाज करती है तो कांव-कांव करते कौए बिखर जाते हैं फिर भी यदि कौए नही उडते हैं तो फिर सरकारी जाच आयोग बैठाया जाता है, जो डाक्टर की तरह पगत म बठे उन ठेकेदारो इजीनियरो, अफसरो, नेताओ का पेट चीरकर देखता है। तब किसी के पेट मे से दस मील लम्बी सडक निकलती है, किसी के पेट मे से लम्बी चौडी नहर किसी के पेट म से कूआँ तालाब निकलता है तो किसी के पेट मे से पूरा कारखाना ही बाहर निकल आता है। पेट चीरकर देखने की नौबत इसलिए आती है कि ये लोग तोंद पर हाथ फेरते हुए आराम से बैठकर भोजन नही करते बल्कि आज के भोजन भट्ट गाय की तरह फटाफट भोजन चर लेते है फिर आराम से बठकर जुगाली करते रहते हैं।

भोजन करने वाला के बारे मे इतना विचार कर लेने पर भी मन ने सोचना बन्द नही किया। फिर मन मे यह दूसरा प्रश्न उठा कि जिन लोगो को भोजन नसीब नही होता वे क्या करते हैं? इस प्रश्न के साथ ही मन से यह उत्तर भी आया कि ऐसे लोग भजन करते हैं। अर्थात जो लोग खोटे भाग्य के कारण भोजन नही कर पाते वे लोग भजन करते हैं। प्राचीन काल से ही हमारे यहाँ अनेक योगी, महात्मा साधु भक्त होते रहे हैं जिन्होने भजन करने मे ही सारा जीवन लगा दिया। भोजन भट्टो की तरह भजन भट्टो की भी इस देश मे कोई कमी नही रही है। भक्त प्रह्लाद ध्रुव, नरसी भगत कबीर, सूर, तुलसी मीरा गाधी सभी ने भजन ही तो किया है। इनके चित्र देखने से ही प्रतीत हो जाता है कि इन लोगो का भोजन से कोई वास्ता नहीं था। सभी के पट पिचके हुए दिखाई देते हैं, सभी के शरीर म हड्डियों के ढांचे के अलावा और कुछ भी नजर नही आता। यद्यपि भजन के सम्ब ध म यह महावत मशहूर है— 'भूखे भजन न होहि गोपाला, ये लो कठी, य लो माला'। तथापि यथाप

जगत् में यही दिखाई देता है कि सिर्फ भूखा ही भोजन करता है। आजकल मंदिरों के बाहर, तीर्थ स्थानों पर, फुटपाथों पर भजन करने वालों की भीड़ लगी रहती है। हाथ में करताल, मजीरे आदि लेकर ये लोग भगवान के लिए भजन करते हैं या रोटी के लिए, यह किसी से छुपा नहीं है। दूसरे लोग भी जिनको भोजन करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता, रामनामी दुपट्टा ओढ़ लेते हैं और भजन करने लगते हैं। वैसे ज्यादातर लोग बगुला भगत होते हैं क्योंकि अवसर मिलने पर वे भोजन करने में भी संकोच नहीं करते। इतना चिन्तन करने पर मन में यह निष्कर्ष निकला कि जैसे एक म्यान में दो तलवारें साथ नहीं रह पाती वैसे ही एक ही व्यक्ति दोनों काम नहीं कर सकता। इसीसे भोजन करने वाले भोजन करते हैं और भजन करने वाले भजन।

सारे रास्ते भर ये ही विचार मन में आते रहे। घर पहुँचते ही पत्नी ने भोजन परोस दिया। उस दिन न जाने कैसी भूख जाग्रत हुई कि मैंने एक सच्चे भोजन भट्ट की तरह डटकर भोजन किया और पत्नी के लिए भजन करने की स्थिति पैदा हो गई।

करामात दाढ़ी की

लोग मुझे अच्छी तरह जानते हैं। जानें भी क्यों न भला आखिर मैं एक जानी मानी हस्ती जो हूँ। चाहे वे मुझे शक्ल-सूरत से जानते हों या न जानते हों पर नाम से मुझे अवश्य जानते होंगे। अगर नाम से न भी जानते होंगे तो मेरी दाढ़ी से सभी परिचित होंगे। दाढ़ी की बात और दाढ़ी की करामात के चर्चे तो बच्चे बच्चे की जबान पर हैं फिर भी लोग मेरी इस हस्ती को जलवा नहीं मानते। मैं जरूर इस दाढ़ी की करामात का कायल हूँ। यह कमबख्त जब बढ़ती है तो कुछ न कुछ गजब जरूर ढाती है। मैं तो महज इस दाढ़ी की वजह से पापुलर हो गया हूँ, इसी के बलबूते पर जब तब मैं उखाड़-पछाड़ की घोषणा कर दिया करता हूँ। मेरे बॉस भी मुझसे कतराते रहे हैं लेकिन इस दाढ़ी के सहारे ही मैंने ऐसी पठ जमाई कि जिन बॉस का सितारा अस्त हो गया था वे फिर चमक उठे। जब वे मुझसे कतराते रहे तब हम हमारे थे वे उनके थे। तब मैंने बॉस के प्रति अपनी वफादारी का इजहार कर दिया। अब आपको राज की बात बता दूं कि जब बास का सितारा अस्त हुआ था तब जोड़ तोड़ बिठा कर बॉस को फिर भीतर कर दिया अर्थात उनका बाइज्जत फिर से प्रमोशन दिया इस इराद स कि जिस काम को लाट सा० ने हमे सौंपा था उसको हम जब पूरी तरह नहीं कर पाए तो उन्होंने हमारा पत्ता काट दिया। चुंकि लाट सा० ने हमारी अफसरी छीनी थी इसीलिए उन्हें सबक सिखाया जाता था। बात की बात मे तय हो गया कि तुम भीतर रहकर काटोगे और मैं बाहर रहकर पटाऊँगा। बस मौका देख कर वह पटकनी दी कि लाट साहब और उनके साथी चारो खाने चित्त हो गए।

देखा न आपने जो भीतर रहकर यह कह दे कि मेरा उससे कोई सम्बन्ध नहीं है वही बॉस फिर मुझसे आ मिला। भला रामायण का राम भी बिना हनुमान के नहीं रह सका तो कलियुगी राम हनुमान की बात कैसे नहीं मानता। महत्वाकांक्षा बड़ी चीज होती है। राजनीति क्या-क्या गुल नहीं खिलाती। पद की भूख बॉस को मेरे खेमे मे ले आई। टूटे हुए सम्बन्धों का इजहार कर देना तो महज हमारी चाल थी। बस दम लगा और खिसके। तुलसी बाबा ने भी कहा था—

सुर नर मुनि जन की यह रीति।
स्वारथ लागहि करहि सब प्रीति ॥

पद प्राप्ति के स्वार्थ ने बॉस को भी मेरे इशारो पर नाचने को बाध्य कर दिया। इसमे मेरा अपना कोई करिश्मा नही था। मैं तो यह सारा करिश्मा इस दाढी का ही मानता हूँ। न तो मैं कोई मात्रिक हूँ न कोई तात्रिक ही हूँ। लोग यह भ्रम पाले हुए हैं तो पाले रहे। मुझे कोई एतराज नही। मेरी चाल तो वही बेढगी जो पहले थी अब भी है।

हाँ, इस दाढी के बारे मे एक बात और बता दू। मैंने इस खिचडी दाढी को घासलेट या अन्य हल्के फुल्के तेल पिला कर नही पनपाया है। इसे पनपाया है लखनवी अदाओ से, कन्नौज के इत्र फुलेल से। जब यह पनपती है तो किसी के खिसकने का पैगाम लेकर पनपती है। उसका पत्ता कटा और दाढी भी सफाचट। जिस जिसको मैंने इत्र लगाया इत्र की महक से उसका माथा भन्नाया या नही पर वह सडक छाप जरूर हो गया था। जब बास ने मुझसे हाथ मिलाया था तब भी मैंने इसी इत्र का उपयोग किया था। कमबख्त इस इत्र ने अपनी असलियत तो जाहिर कर दी लेकिन बास की चमक गायब कर दी। लोग कहने लगे लालकिले पर चढा कर तुमने बास को कुतुबमीनार से गिरा दिया। इसमे मेरा और मेरी दाढी का कोई दोष नही। अगर कमाल दिखाया होगा तो इत्र की महक ने ही दिखाया होगा। अब दाढी की तरह लोग मेरे इत्र को दोष दें तो देते रहे मैं तो बॉस का 'लेफ्ट राइट' हूँ। मेरी औकात से बॉस परिचित हैं। इसलिए मेरी दाढी और इत्र से उन्हे कोई नुकसान होने वाला नही है। खुदा न खास्ता नेक परवरदिगार ने चाहा तो बॉस का सितारा फिर से बुलन्द होगा, चमक फिर से लौट आएगी। हा, अबकी बार मैं विश्वास दिलाता हूँ कि कोई इत्र नही लगाऊँगा।

एक मुहावरा है—चोर की दाढी मे तिनका [illegible]। [illegible] वाले भी गडबड हैं, कुछ भी कहते रहते हैं। हिन्दी मे [illegible] है लेकिन [illegible] का रुख देखकर अंग्रेजी वालो को पटाने [illegible] कुछ बात [illegible] अन्य राजनीतिज्ञों की तरह मेरे भाषणों का [illegible] करना पडता है। [illegible] चाहे कुछ भी कहते रहे, मैं तो [illegible] आ गया हूँ [illegible] की बातें सुन सुन कर तग आ गया हूँ। [illegible] है कह दिया करता हूँ।

हाँ, तो बात चोर की दाढी [illegible] रही है। [illegible] होता है जो चोर होते हैं। [illegible] का बाना पहनने के लिए [illegible] लिए मेरे हथौडा छाप [illegible]

समझाते हैं कि जो कुछ मैं कह रहा हूँ वाकई वह शत प्रतिशत सही है। दर-असल मैं यह देता हूँ कि जो कुछ मैं कह रहा हूँ उसके प्रमाण मेरे पास हैं। हकीकत तो मैं जानता हूँ कि मेरे पास कोई प्रमाण नही होते। आप ही सोचिए मैं कोई मूख हूँ जो प्रमाण थली मे बद करके बैठा रहता। जनता जनादन के सामने उनको न लाता। अजी जनाब प्रमाण अगर मेरे पास होत तो कभी की फोटो स्टेट कापियाँ अखबार वालो को न दे देता!

यह तो जनमत को अपनी ओर खीचने का एक तरीका है। शुरू-शुरू मे लोगो ने मेरी बातो का मजाक भी उडाया पर सौ बार एक झूठ को दोहरा दिया जाए तो वह भी सच हो जाता है। बस यही टेक्नीक काम मे ले लेता हूँ। बस इसी टेक्नीक स अललटप्पू बात कह कर मैं अपने विरोधियो के मुँह बन्द करने की कोशिश करता हूँ। मैंने कही पढा था कि हवा का असर मूर्खों की जमात पर बहुत जल्दी होता है तब जाकर जनतत्र फलता फूलता है। जो कुछ मैं कहता हूँ उसको इस प्रकार दहाड कर अपनी बात सुनाता हूँ कि मेरी बात उनके गले इस डिग्री पर उतर जाती है कि मुलम्मा चढा रह जाता है और कलई भी नही खुलती।

राजनीति के रग मे मैं शुरू से रगा हुआ हूँ, हँसिया और हथौडा, इनको मैंने कभी देखा भी नहीं! यह बात कहने म मुझे कोई सकोच नहीं कि राज-नीति म मैंने हर बार मात खाई है। कहत हैं कि बारह साल म घुन के भाग्य फिरते हैं पर मेरे भाग्य की क्या कहूँ तीस वष मे फिरे। बात की बात मे पाँसा पलट गया और बदली हुई हवा ने मुझे जिला दिया।

राजनीति मे जि दगी गुजारने की कसम खाई थी सो कई बार जेल भी जा आया। मेरी हरकतो को देख कर लोग मुझे सनकी, पागल, बहुरूपिया और मसखरा और न जाने क्या क्या कहत हैं। मुझे इससे कोई मतलब नही। मैं तो आम खान स काम रखता हूँ, मैं पेड नही गिना करता। इसी सिद्धा त को ध्यान म रखकर मैं राजनीति का घुर घर बन गया हूँ। और लोग मेरा जलवा मानें या न मानें पर तीन तीन लाटो को मैंने धूल चटवा दिया है इसलिए वे तो मेरा जलवा मानेंगे ही। कुछ लोग तो मेरे मसखरेपन को देखकर भडक उठे हैं, यहा तक कि मुझसे दगल करवाने के लिए किसी मसखरे को ही तैयार कर रहे हैं। चूकि एक जगल म दो शेर नही रह सक्त उसी तरह एक अखाडे से दो मसखरे नहीं लड सकते। अगर एसा हुआ तो अखाडे म न उतरने की घोषणा कर दूगा। इस घोषणा करने से भी लोग मुझे मसखरा ही कहेंगे।

मुझे राजनीति का बहुरूपिया कहा जाता है तरस आता है मुझे इन लोगो की बुद्धि पर कि 'गिरगिटिया राजनीति मे अगर कोई गिरगिट की तरह रग नहीं बदलता, मौके का फायदा नही उठाता।" भला वह भी क्या राजनीतिज्ञ

हुआ। उसे तो राजनीति से सन्यास लेकर किसी कन्दरा मे डेरा डाल देना चाहिए। आप कहेंगे, पहले मैंने ऐसा नही किया अब क्यो इस तरह की बात कर रहा हूँ। मैंने भी हवा का रुख देख कर ही काम किया है सिद्धान्त टूटे तो भले ही टूटे, हलवा खात दांत घिसें तो घिसें मतलब पूरा होना चाहिए। बात मसखरेपन की चल रही है। एक मसखरा अपनी जिन्दगी मे सिरियस कभी नही रह सकता वह तो मसखरा बनकर ही जीता है और मसखरापन ही उसकी जिन्दगी का गुर होता है।

एक फिल्म देखी थी—तौबा-तौबा, मैं झूठ बाल गया, भला 'जोकर' फिल्म देखने की मुझे क्या जरूरत थी, देखी नही, एक गाना सुना था "ऐ भाई जरा देख के चलो '—उसी गान मे आगे कहा था—"ये सरकस है तीन घटे का गाने मे कहा था—"यहाँ हीरो स जोकर और जोकर से हीरो बन जात हैं'—बस उस फिल्म म सरकस की दुनिया को चित्रित किया था। मैंने भी रिंग मास्टर की तरह छटे छटाए कलाकारो को अपने खेमे म इकट्ठा किया और 'राजनीति का सरकस' गुरु कर दिया। गीत की पहली पक्ति भूल गया—'ऐ भाई जरा देख के चलो " जल्दी म जो कलाकार मेरी दाढी की करामात को जानत थे। वे मेरे खेम म आ मिले—काम शुरु हुआ। सरकस चला पर यह सरकस तीन घटे का नहीं अपितु तीन सप्ताह का था। वास्तव मे इस राजनीति के सरकस ने हीरो से जोकर और जोकर स हीरो बना दिया था। अब तो आप भी मेरी दाढी का जलवा मानने लगे होगे। अगर न मान तो भले ही न मानें पर असलियत तो यही है कि मैं इस दाढी को जब सफाचट कराकर जब आदत के मुताबिक बार बार हाथ फेरता हूँ तो लगता है, गजब ढाने का हथियार गगा किनारे छोड आया हूँ।

इतना सब होते हुए भी मेरी लपर चपर करने वाली जबान बदस्तूर चलती रहती है। चाहता हूँ 'वाचा सिद्धि' का आलम मुझे प्राप्त हो जाए तो मैं गजब ढा दूं।

राजनीति मे बडो बडो को पापड बेलने पडते हैं। मैंने भी कम पापड थोडे ही बेले हैं। बिल्ली के भाग्य स छीका टूट पडा इसी बल बूते पर मैं उखाड पछाड करता रहता हूँ। राजनीति मे रगे राजनेताओ के पास डबल पावर' होता है, बस यही मान लीजिए मेरे पास भी डबल पावर है जिसके कारण मैं लपर चपर करने वाली जबान पर लगाम नही रख पाता। चाहे बात अच्छी लगने वाली हो या बुरी लगने वाली हो, चाह बात सवैंधानिक हो या असवैधानिक लेकिन इस दाढी के बलबूते पर मैं तो बोल देता हूँ अजाम की परवाह मैं नही किया करता।

काफी देर से अपने बारे मे बहुत कुछ कह गया। आप भी अगर

करते हो कि आप मे भी ऐसी कुछ विशेषताएँ हैं तो आपको भी जनतंत्र मे बहुत कुछ कहने का अधिकार है। आप भी बिना लाग लपेट अपनी बात कह सकते हैं। ध्यान रहे कि अगर आपके पास डबल पावर न हो तो सोच समझ कर बात कहना नही तो लेने के देने पड जाएँगे।

अच्छा, अब चलता हूँ। डाक भी देखनी है। यह भी देखना है कि अखबार वाले क्या कहते हैं।

अच्छा अलविदा !

एक इण्टरव्यू

पण्डित कलानाथ 'कलेश' जब परलोकगामी होने लगे तो उनके साहित्यिक बन्धु बान्धवो तथा "चिर परिचितो' ने घेर लिया। व धु-बा धव उनकी साहित्यिक सेवाओ की सराहना करते हुए धष्ट आलोचको को कोसने लगे कि उन्होने कलेशजी की युगद्रष्टा लेखनी को नही पहचाना। पहचान लेते तो कलेशजी युग प्रवतको की श्रेणी म आ जाते। चिर परिचित समुदाय सम्पादको और प्रकाशको पर गुस्सा उतारने लगा कि उन्होने कलशजी जैसे दिग्गज साहित्यकार की रचनाओ का समय रहते प्रकाशन नही किया वरना आज 'उन्हें' यह दिन नही देखना पडता। (पाठक वृन्द ! यहाँ उन्हे शब्द का श्लेष द्रष्टव्य है—उन्हे यानी कलेशजी को यह दिन नही देखना पडता अर्थात वे अकाल मत्यु के लिए विवश नही होते और उन्ह यानी चिर परिचितो को यह दिन नही देखना पडता अर्थात उनकी उधारी का हिसाब कभी का साफ हो गया होता।) कलेशजी की सास न जाने किसम अटकी हुई थी। व सोच रहे थे कि एक रससिद्ध कवि की पक्ति पर—'जा दिन मन पछी उडि जैहै, ता दिन तन तरुवर के सबै पात झरि जैहै।" तन तरुवर के पात तो झरने जा रहे थे पर मन पछी के पख न जाने किस सरेस से चिपक गये थे कि उड ही नहीं पाता था बेचारा। कलेशजी चारो तरफ देखते और गहरी नि स्वाँस छोडते। उपस्थित समुदाय के लिए यह मर्मान्तक पीडा का क्षण होता। एक बन्धु न साहस करके पूछ ही लिया—'कलेशजी, आप इतने व्यथित क्यों है? [illegible] अच्छा करेगा। आपकी कोई इच्छा (अन्तिम) हो तो कहिए। [illegible] बुदबुदाये—'का फी।" काफी बनवाई गई। पीकर कलेशजी को [illegible] आया। बोले—"बन्धु, किसी इण्टरव्यूकार को बुलाओ। [illegible] के नाम अपना सदेश देना चाहता हूँ।" एक पग्गडधारी [illegible] बगल मे दबी बही को कसकर पकडते हुए अपने पडासी [illegible] हो के या ब्यूक कार तो घणी मेहगी होवे कलेशजी [illegible] बयान कर दी। भला मनख, रजाई देख र तो पाव [illegible] एक साहित्यिक बन्धु ने कुहनी मार कर पग्गडधारी [illegible]

का सकेत किया।

टेलीफोन किया गया। एक पतले दुबले से फोराइज्ड विज्ञापननुमा युवक ने कमरे मे प्रवेश किया। आखा पर चश्मा तीन चौथाई गालो को भी ढके हुए था। यह इण्टरव्यकार था। इसे देखकर उपस्थितो का मस्तक श्रद्धा भाव स झुक गया। आखिर कलेशजी ने याद किया है, कोई गैर मामूली आदमी होगा। लेकिन एक मसखरा टाइप बन्धु के मन मे कविता उमडने लगी—सारी बिच नारी है कि नारी बिच सारी है की तर्ज पर—"गाल बिच चश्मा है कि चश्मे बिच गाल है, गाल ही का चश्मा है कि चश्मे ही का गाल है आदि आदि। वे गुनगुनाने का मूड बना ही रहे थे कि एक मित्र ने टोक दिया। स्थिति की गम्भीरता देख कर ब धु शा त रहे। इण्टरव्यूकार महाशय इतमीनान से मोढे पर बैठ गये। अपने ब्रीफ केस मे से कागज निकाले और सधे हुए अन्दाज मे प्रश्नो का पिंगपोंग शुरू किया।

प्र०—हा तो कलेशजी, आपने लिखना कब शुरू किया ?

उ० मा भारती की आराधना मैं किशोरावस्था से ही कर रहा हू।

प्र० निश्चित सन बतलाइये न ?

उ० मैं लेखन को काल के ब धनो मे नही बाधना चाहता। लेखन कालातीत होता है। लेखक स्वय काल का नियामक होता है। मुझे खेद है कि यह सामान्य तथ्य भी हमारी युवा पत्रकार पीढी नही जानती।

प्र० खैर जाने दीजिए। आपने किन किन विधाओ मे लिखा है ?

उ० पूछिये महाशय कि मैंने किस विधा मे नही लिखा है। जगदम्बिका वाणी की अचना मैंने नाना रग, विभिन्नाकृति, अनेक गधा प्रसूना से की है। सम्पादक के नाम पत्र लेकर महाकाव्य तक हर कोटि का लेखन मैंने हर विधा मे किया है।

प्र० आपका सर्वाधिक प्रकाशन किस विधा म हुआ है ?

उ० यही ता रोना है मितवा मेरे सम्पादको के नाम कतिपय पत्रा का छाड कर शेष रचनाएँ अभिवादन क भार से लद कर लौट आइ। दरअसल हमारे देश मे साहित्य छपता है, साहित्य की परख कहा है हमारे लोगो को। जी तो करता है रचनाओ के अनुवाद करवा कर विदेशी पत्रिकाओ का भेजा करू पर लोग इसे भी प्रतिभा पलायन का मामला समझेंगे। फिर स्वदेश की सेवा का अपना अलग महत्व जो है।

प्र० आप अपन आपको किस लेखक स प्रभावित मानत हैं ?

उ० देखो मित्र, मैं आप स स्पष्ट कह दू कि ऐसे अपमानजनक प्रश्न सुनने की आदत मुझे नही है। प्रभावित होता है इस देश का युवक अभिनता स, प्रभावित होता है इस देश का वयस्क नेता से। लखक किसी स प्रभावित

नही होता। वह स्वयम्भू है। वह चैतन्य का विराट रूप है।

प्र० आपका प्रिय ग्रथ ?

उ० इस देश मे ग्रथ छपने बन्द हो गये हैं। घास के गट्ठरो को मैं ग्रथ नही मान सकता। प्राचीन ग्रन्थो मे मेरा प्रिय ग्रथ 'हनुमान चालीसा' है।

प्र० आपकी इस पसन्द का कारण ?

उ० कारण बिलकुल स्पष्ट है। मैंने इस ग्रथ के एक एक अक्षर पर महीनो मनन किया है। मेरी तो हार्दिक इच्छा थी कि अपना पी एच० डी० थीसिस भी इस पर लिखना। (गद्गद स्वर मे) क्या दर्शन है साहब 'कुमति निवार सुमति के सगी " कुमति रूपी निवार सुमति रूपी पलँग पर आच्छादित रहती है खर जाने दीजिए। बडा गूढ विषय है। आप नही समझेंगे।

प्र० अच्छा कलेशजी, एक निहायत व्यक्तिगत प्रश्न पूछ रहा हूँ। यदि आप साहित्यकर्मी न बनते तो क्या बनते ?

उ० जी। सवाल वाकई टेढा है मगर व्यक्तिगत नही है। यह एक सामाजिक सवाल है। बल्कि मैं कहूँगा राष्ट्रीय सवाल है। लेखक का अपना कुछ नही होता। सब समाज का है। राष्ट्र का है। मैं प्रारम्भ से ही स्पष्टवादी रहा हूँ अत इस आखिरी वक्त मे अपना गलत बिम्ब पाठको तक नही पहुचाना चाहता। सच्चाई तो यह है कि इस प्रश्न पर मैंने कभी गौर नहीं किया। काश आप मुझ स एक दशक पहले मिल जाते तो मुझे आत्मबोध प्राप्त हो गया होता और मैं सब्जी विक्रेता बनना पसन्द करता।

प्र० (चौंकते हुए) ऐसा क्यो ?

उ० जब लोग बेमतलब गीत फरोश' और 'दद फरोश बन सक्त हैं तो क्या मुझे इस आजाद मुल्क मे सब्जी फरोश बनने का हक भी हासिल नही ?

प्र० क्यो नही। मगर आपकी इस पसन्द का कोई विशेष कारण ?

उ० कारण क्या है। एक सपात समीकरण है। इस देश म किसी भी अच्छी सब्जी का भाव दो रुपया किलो से कम नही है जबकि लेखन का भाव 35 से 50 पस किलो तक ही है। लेखन म मौलिकता को कोई नही पूछता। यदि मैं इसका उपयोग अपनी दुकान मे करता तो ग्राहक खुद-ब-खुद आकर्षित होते। जैस मैं अपनी दुकान का नाम 'प्यार गुप्तक सब्जी भण्डार' रखता। विभिन्न टोकरियो पर लेबल लगाता—अकरेला, प्रतिबद्ध कद्दू, नई भिण्डी, नवालू, महानगरीय टिण्डे, सन्यासी नीबू, कुठाई लौकी, आज के कमल गट्टे, आम आदमी की गोभी, समान्तर तरोई, प्रगतिशील मिच आदि। पुराने ग्राहकों के लिए छायावादी लहसन, रहस्यवादी प्याज,

हालावादी टमाटर, प्रयोगवादी इमली, उलटबांसी धनिया, अष्टछाप अरबी और सूफी रतालू भी रखता।

एक साथ इतना लम्बा वक्तव्य देने से क्लेशजी की सांस चढने लगी थी अत बन्धुओं ने उन्हें डाक्टर की हिदायत याद दिलाई कि वे अधिक न बोलें। कलेशजी इस स्वण अवसर को कब खोने वाले थे। बोले—"हां, सो तो ठीक है ब धु, पर मैं अपने आदरणीय अतिथि को निराश कैसे करूं। यदि मैं चुप रहा तो ये छाप देंगे—अमुक प्रश्न पर कलेशजी ने मौन साध लिया और इस तरह अकारण ही मैं एक रहस्य का पात्र बन जाऊंगा। तुम तो जानते हो मेरे जीवन मे गोपनीय कुछ भी नही। खुली किताब है। जो चाहे पढ ले। एक छुट-भैया ने बात सँभाली—"क्लेशजी बिलकुल ठीक कहते हैं। सत्पुरुषो का जीवन खुली किताब यानी कोरा कागज होता है। वो क्या तो गाना है न 'मेरा जीवन कोरा ।'

इण्टरव्यूकार को काफी समय हो गया था अत उसने अपना ब्रीफ केस समेटना शुरू किया। तभी कलेशजी पर जैसे बेहोशी सी छाने लगी। अर्द्ध निमीलित नेत्रों से वे बुदबुदाये 'का फी। काफी फिर बनी। करार फिर आया। काफी और करार के इस दौर मे उन्होने टांड पर रखे एक हरे बक्से की ओर सकेत करते हुए इण्टरव्यूकार को बताया कि उनकी अप्रकाशित एवम सद्य कृतियो की अमूल्य सम्पदा इसी म सुरक्षित है। इसकी चाबी खाट के पताने वाले बायी ओर के पाये म सतह से सवा दो इच गहरे गडढे मे रखी है। ऊपर वापस लकडी का कवर तथा वार्निश है ताकि किसी को शक न हो। वक्त जरूरत मेरी पत्नी के सौजन्य से आप इसे प्राप्त करें तथा यत्र तत्र सवत्र प्रकाशनाथ भेज दें। हा, सबसे पहले मेरी इच्छा 'अधमयुग' म प्रकाशित होन की है—इस टिप्पणी क साथ "एक सघषशील साहित्यकर्मी की कही भी प्रकाशित होने वाली पहली कृति।' रचना छाटी है। रग व्यग्य मे चल जाएगी।'

इतना कहने क साथ ही क्लेशजी का सर एक ओर लुढक गया। केमरा मेन ने फटाफट तीन चार किलक दबाये। इण्टरव्यूकार न पकट की आखिरी सिगरेट का अग्नि सस्कार करते हुए ब्रीफ केस सभाला और बाहर हो गया। शनै शन अन्य उपस्थित भी खिसकने लग। उन्हें स तोष था कि आजीवन उपेक्षित एक महान विभूति के साथ कल उनके चित्र भी अखबारा के मुख पृष्ठो को सुशोभित करेंगे। चलो, किसी तरह समय की कीमत तो वसूल हो गई।

छोटे चमचे का आत्मकथ्य

लोग मुझे 'चमचा' कहते हैं।

इस देश म पदो नति करने मे लोग माहिर हैं। नायब तहसीलदार, तहसीलदार, कम्पाउण्डर, डाक्टर, सिपाही, थानेदार की तुर त सज्ञा पा लेता है। मैं दरअसल चमचे का चमचा हूँ यानि 'बिग चमचे' (कलुछे) का छोटा चमचा, पर मेरी भी पदोन्नति हुई है और अब मात्र 'चमचा' रह गया हूँ।

मुझे इसमे उसी प्रकार आपत्ति नही है जिस प्रकार प्रसादजी को कामायनी के सावेतिक अथ देने मे आपत्ति नही थी। चमचा कहने स तो मेरी प्रतिष्ठा बढी ही है। वस्तुस्थिति तो मैं जानता हूँ। जन सामा य ने भला वस्तुस्थिति पर कब गौर किया है ? मैं जिस बिग चमचा (कलुछा) का चमचा हूँ, उसकी ख्याति देखकर मैं दग रह जाता हूँ। जब स्वय मैंने इतनी ख्याति अर्जित कर ली है तो उसकी ख्याति (?) का आप स्वय अनुमान लगा सकत हैं। सवेरे से रात तक पचासो लोग उसके यहा आते हैं कोई जमीन अलाट करान के सम्ब ध मे, वगरह वगैरह। लोगो को विश्वास रहता है कि बास को कहकर वह काम करवा देगा। चमचा का दबदबा सब मानते है, सब मानते हैं कि वे उनका काम करवा देंगे, चाह ऐसा हो या नही।

उस दिन एक सज्जन आये। सबा से भरे थैले को देख तबियत बाग-बाग हो गई। चमचागीरी ध य हा उठी। भलीभाति जानता था कि ये सेब अपने लिए ही हैं। चमचा की नजरो म क्या सभी इ द्रिया तज होती हैं। कुछ लोग कहते हैं कि इनका दिमाग नही होता। अरे भाई, दिमाग है तभी तो दूर के फायदे की बात सोचते हैं। आप तो ऐसा नही कर सकत। हा, तो उस सज्जन ने सेब बाहर पटकते हुए कहा—

'गगानगर से लाया हूँ—बच्चो के लिए।'

'आपने व्यथ मे कष्ट किया।' मैंने औपचारिकता का निर्वाह किया।

'आप तो अपने आदमी हैं' वह सीधा ही बिजनस पर आया। अपने मित्र (कलुछा) से कहकर मेरी मुनी का ट्रासफर देशनोक से बीकानेर करवा दो न। उनकी तो ऊपर तक जान पहचान है "

'ठीक है' मैंने गम्भीरता पूरी तरह से ओढ ली, 'मैं आज बात करके देखूगा।' उन्होंने झुककर नमस्कार किया और चले गये।

अब मैं इन महाशय का काम नही करवाऊँगा। यह मेरा भारी अपमान है। जनाब कह गये हैं मिश्र से वह कर—अरे भाई, छोटे चमचे की अपनी भी स्टैंडिंग होती है—उनका भी स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है। बॉस के यहाँ हाजरी भरने का काम मैं भी कम नही करता, बल्कि इस क्षेत्र मे मैंने चमचा इतिहास के सभी रिकार्ड तोड दिये हैं। इसके अतिरिक्त मैंने भक्तिरस के क्षेत्र मे भी तुलसी-सूर से कहीं बढकर काम किया है। जब जब बिग चमचा (कलुछा) सामने पड जाता है तो स्वय ही जैसे साकार हो उठता है, बाछें खिल उठती हैं। रोम रोम पुलकित हो उठता है, नत्र मुद जाते हैं और हाथ स्वत जुड जाते हैं और यदि बॉस सामने आ जाये तो दिल वासो (बास के कारण) उछलने लगता है, वाणी उनकी स्तुति के लिए मचल उठती है, हाथ और सिर ही नही, रोम राम उनके चरणो म लोटन लगते हैं। दो अमृतमय शब्द सुनने के लिए कान खड़े हो जाते हैं, कण्ठ गद्गद हो उठता है, आखें वाष्पित हो उठती हैं, जीवन धन्य हो जाता है। भगवान और भक्त के मिलन का सा अपूव दृश्य उपस्थित होता है। बॉस और चमचे के साक्षात्कार का पूरा वणन हो ही नही सकता। 'गिरा अनयन नयन बिनु वाणी।'

चमचे सभी विभागो में पाये जाते है। जीवन का कोई भी क्षेत्र चमचो से अछूता नही है किन्तु शक्तिशाली नेता का चमचा ही असली चमचा होता है। वह स्टेनलैस स्टील का होता है, शेष चमचो में तो जग लग जाता है। चमचा चाहे किसी विभाग मे हो स्टील का है तो बेताज का बादशाह होता है। उसके अधिकारी भी उससे काँपते हैं, सहयोगी तो स्वय उसके चमचे बनने का मौका तलाशते रहते हैं। चमचो को अपने विभाग मे काय करने का समय ही नही मिलता। उदाहरण के लिए कालेज का प्राध्यापक अगर चमचा है तो उसका अध्ययन अध्यापन से कोई सम्ब ध नही रहता। उससे सम्ब ध होता है तो चमचा ही क्या बनता ? पर क्या मजाल कि उसका अध्यक्ष या प्रधानाचाय उसको रोक दे बल्कि वे भी उसकी नजरे इनायत को तरसते रहते हैं। जिस तरफ वह देखता है उस तरफ चमचे बनकर लोग उसके आगे झुकने लगते हैं। एक हकीकत बया कर दू—चमचो की इज्जत ऊपरी मन से ही की जाती है। वैसे जहा भी वे जाते हैं लोग उठकर उनका आदर सत्कार करते हैं, जय जयकार करते हैं। लोगों को डर रहता है कि इन महान लोगो के मुह से ये शब्द न निकल पड़े—'मैं तुम्हारा ट्रासफर करवा दूगा।' ट्रासफर से सभी डरते हैं।

चोरों की तरह चमचो के भी चद नियम होते हैं। चोर भी समय-स्थान देखकर चोरी करते हैं तो चमचे भी देशकाल वातावरण देखकर चमचागीरी

शुरू करते हैं—जिस व्यक्ति का सितारा बुलन्द होता है, केवल उसी की शरण मे जाते हैं। बॉस का सितारा गर्दिश म देखकर चमचे अपना बॉस बदल लेते हैं। मैं स्वय अपने 'बिग चमचे (कलुछे) बदल चुका हूँ। यद्यपि मैं अभी तक डाइरेक्ट चमचा नही बन पाया हूँ तथापि मुझे अपना भविष्य उज्ज्वल नजर आ रहा है। शीघ्र ही मैं बिग चमचा बन जाऊँगा—ऐसा मेरा विश्वास है।

चमचे की पत्नी अपने गली मोहल्ले की रानी होती है। वह भी अपनी चमचियो से हर समय घिरी रहती है। मौका देखकर चमचिया अपने पति का दुख दद कहकर कोई न कोई सिफारिश करती रहती हैं। चमचो की पत्नियाँ और बच्चे उपहार लेते लेते कई बार परेशान हो जाते है। ऐसा सुना है कि खरबूजे को देखकर खरबूजा रग बदलता है उसी तरह चमचे का बच्चा अपने बाप को देखकर अपने चमचे तैयार करने लगता है या स्वय चमचा बनने के गुण पैदा करने लगता है। ऐसी स्थिति मे एक घर मे चमचो की कई पीढियाँ तयार हो जाती हैं। उदाहरण के लिए बिग चमचे के पुत्र का चमचा छोटे चमचो का पुत्र बन जाता है—

मैं उन लोगो की परवाह नही करता (वसे वे मेरी परवाह भी कहाँ करते है) जो कहते फिरते हैं कि अपनी इज्जत ताक पर रखकर यह दुम हिलाता फिरता है। अब इनको कौन समझाये कि चमचे तो कबीर की तरह आपा मिटाकर यानि अपनी इज्जत और स्वाभिमान को ताक पर रखकर चमचागीरी के मैदान म पैर रखते हैं। बॉस की इज्जत उनकी इज्जत होती है, बास का नाम उनका नाम होता है। वे ही अध्यापक पूर्णसिंह के अनुसार सच्चे वीर होते हैं। उन्हें यदि किसी चीज से नफरत होती है तो बास के चमचो की अभिवद्धि से। एक चमचा दूसरे चमचे को नफरत की निगाह से देखता है। बॉस के सामने तो वे एक दूसरे से गले मिलते हैं पर बाहर एक दूसरे का गला काटने को तैयार रहते हैं।

चमचो के गुणा पर लिखने के लिए एक अलग ग्रन्थ की आवश्यकता है। उनके गुण अनुकरणीय हैं। वक्तृता का गुण तो चमचा मे कूट कूटकर भरा होता है। बार बार स्तुति करने से चमचे की जुबान मक्खन की तरह चिकनी हो जाती है। वह प्रत्येक व्यक्ति का परिचय प्रचारात्मक ढग से देता है। अतिशयोक्ति अलकार तो उसकी जिह्वा पर हर समय निवास करता है। मेरा स्वय का अनुभव है कि जब किसी लाभ देने वाले व्यक्ति का परिचय देने लगता हू तो जिह्वा पर मानो सरस्वती आकर बैठ जाती है और मैं अछूते अलकारो से कवि केशव को भी पछाडने लगता हूँ। इस परिवतनशील ससार मे हमे सदा भय लगता रहता है कि कौन कब बिग चमचा या बॉस बन जाय जीभ को सदा मक्खन से तर रखना पडता है।

चमचो की सहनशीलता प्रशसनीय होती है। वे प्रत्येक अवसर पर मुस्कराते नजर आते हैं। वे जानते हैं कि जो उन्हें हिकारत की नजरो से देखते हैं वे ही जरूरत पडने पर उनके आगे हाथ जोडते हैं। लोग उनके बारे मे कुछ भी कहे वे गीता के स्थितप्रज्ञ की तरह निर्विकार बन रहते हैं। चमचो की यह विशेषता भी देखने मे आती है कि और कोई प्रशसा करे या न करे वे स्वय अपनी प्रशसा दिन रात करते रहते हैं।

चमचा पद मोह लोभ काम क्रोधादि विचारो स बहुत दूर होता है। चमचा पद स्वय मे गरिमा मण्डित होता है अत दूसरे पद की आकाक्षा ही उसे नही होती। हाथी के पाव मे सब का पाँव। उसे मोह का भी परित्याग करना पडता है क्योकि बास और कलुछे ही काफी मोहाध होते हैं उसकी तो बारी ही नही आती। लोभ का तो प्रश्न ही क्या ? जब जीवन की साथकता और सफलता चमचा बने रहने म है तो अ य चीजों का लोभ ही क्यो किया जाय ? काम। राम राम !! बास वगैरह ही इस राह का छोडते नही—उसे कौन अवसर देगा ? हाँ, बास यदि महिला हो तो कभी कभी चमचियो से खैर। सभी बातें कह देना चमचा नियम के विरुद्ध है। क्रोध यदि हम लोगों को आये तो इस क्षेत्र मे एक दिन भी टिकना मुश्किल हो जाय। हमे सबसे अधिक शिक्षा ही इस बात की दी जाती है कि क्रोध को जीतो। कोई कुछ कहता रहे, तुम सदा मुस्कराते रहो। झिडकियाँ और गालिया तो चमचो का उत्साहवद्धन करती हैं और वह दुगने उत्साह से इस क्षेत्र म काय कर पाता है।

अ त मे इतना ही कहना पयाप्त होगा कि चमचे की आत्मा उस जीप की तरह होती है जिसकी ब्रेक फेल हो गई हो। चमचा बिना सोचे समझे आगे बढता रहता है। आत्मा रूपी ब्रक के बिना वह कई बार बास को भी हिट कर जाता है और स्वय बॉस बन जाता है। वैसे य सभी किसी न किसी के चमचे ही होते है और इनका जीवन-सूत्र केवल इतना ही है जो बाबा तुलसीदास के जीवन-सूत्र से मिलता-जुलता है—

हानि लाभ, जीवन मरण यश अपयश बॉस हाथ।

कई कुत्ते जो कुत्तो की मौत नही मरते !

मैं अखबार उठाता हूँ। मैं रोटी खाने और अखबार पढने मे बडी जल्दी करता हूँ। सटासट रोटी खा लेता हूँ।

कई बार ता मेरी पत्नी बडे ही मीठे शब्दा मे बडी कडवी बात कह देती है। कोई किसी का कहे कि तुम पिछले ज म मे कुत्ते थे, तो उसका जबाव हाथा-पाई के सिवाय कुछ नही हो सकता, बशर्ते कि सुनने वाले म जरा भी स्वाभिमान हो। पर मैं यह बात कई बार सुन चुका हूँ। शुरु मे तो मैं चमका और गुर्रा कर बोला कि जैसा खाना जिस तरह खिलाया जाता है, उसको मैं खा लेता हूँ, यही मेरा कुत्तापन है न ! खैर, यह तो पुरानी बात हो गई। अब तो मैं इस तरह के रिमाक और खाने सटासट निगल जाता हूँ। खाना निगलता रहता हूँ और साथ साथ बात भी। चबाने से उसका कडवापन जीभ को बरदाश्त नहीं। अचेतन मे इसके पीछे कारण शायद यही रहा हो कि जीभ अस्वादिष्ट खाने को हलक की तरफ धकेल देती हो। भोजन-नली मे से होता हुआ खाना गडगड करता पेट मे। खर, मेरा पेट मेरी जीभ से कही ज्यादा अच्छा है। मैं अपनी आदत का शिकार। अखबार की खबरें भी इसी प्रकार निगलता हूँ। न कभी चबाता ही हूँ और न रस ही लेता हूँ। हो सकता है कि खाना और खबरो मे कोई स्वाद ले सके, ऐसी मेरी रसना न हो। मैं आदी, मेरा पेट आदी।

सब कुछ निगल जाने के बाद मैंने कई बार अकेले मे सोचा है कि कुत्ता इतना जल्दी क्यो खाता है ? क्या वह धीरे धीरे चबाकर नही खा सकता ? अगर ऐसा वह कर सकता तो उसकी आतो को दिक्कत नही होती, कुत्ते का स्वास्थ्य ठीक रहता, दीर्घायु होता। परन्तु कुत्ता नासमझी से बेमौत और असमय म मर जाता है। इसी वजह से कोई आदमी जब ढग से नही मरता तो लोग कहते है कि कुत्त की मौत मर गया। लोग जीने मे कला ढूँढते हैं। 'लाइफ स्टाइल'—की बात करते हैं। परन्तु कुत्तो की तो एक ही मरण शैली होती है—'डेथ स्टाइल' जिसको वे बडी खूबी से जानते हैं। हर 'माइन्यूट डिटेल' का शायद वे इतना बखूबी पालन करते हैं कि उनका एक ट्रेडमाक हो गया, एक पेटेन्ट बन गया। यह पटेन्ट मशहूर भी इतना कि बहुत सारे आदमी भी आजकल

इस पैटर्न पर मरते हैं। सहानुभूति में दो शब्द कहने का भी एक ढर्रा प्रचलित हो गया 'आदमी तो बहुत अच्छा था, नेक था, परन्तु हालात ने इस प्रकार मजबूरियां थोपी कि बेचारा कुत्ते की मौत मरा'। इस तरह की समवेदनाओं तथा शोक-सन्देशों के बीच बहुत से लोग कुत्ते की मौत मरते हैं। मरने वालों की संख्या भी खूब बढ़ गई है जैसे कि मरने का भी कोई नया फैशन चल पड़ा हो। अलबत्ता यह बात जरूर है कि 'होट डाग्ज' खाने वाले लोग इस प्रकार की मौत मरते कम देखे गये हैं।

रात्रि में ज्योंही कुछ कुत्ते जोर से 'हू-हू' करने लगते हैं तो मेरी पत्नी को बड़ी चिन्ता होती है। अगर मैं सोया हुआ भी होऊँ तो भी वह मुझे जगाकर कहेगी 'देखो तो सही कुत्ते रो रहे हैं, कोई बड़ा आदमी मरने वाला है।' मैंने उसे कई बार समझाया है कि जब कोई बड़ा आदमी मरता है तो कुत्ते नहीं रोया करते, उसके पीछे रोने के लिए बहुत सारे लोग होते हैं। सारा देश रोता है झण्डे झुक जाते हैं रेडियो पर चलते प्रोग्राम रुक जाते हैं, मातम की धुनें बजने लगती हैं। इसलिए जब कुत्ते रोते हैं तो समझ लो कि बड़ा आदमी तो नहीं ही मरेगा। तुम्हारी आशंका बेबुनियाद है।

'कोई बहुत बड़ा आदमी न सही, छोटा मोटा नगर स्तर का आदमी हो सकता है आखिर इतने सारे कुत्ते बेमतलब थोड़े ही रोते हैं। रात को ऐसे बेवक्त पर। जरा सोचो कोई न कोई कारण तो होगा ही'—मेरी पत्नी भी जिद पकड़ लेती है।

मेरी पत्नी में एक भारतीय नारी के सभी गुण हैं। उनकी फेहरिस्त बनाना तो मुमकिन नहीं। उसमें तो गुण ही-गुण हैं सिवाय दो छोटे से नगण्य अवगुणों के—हिय में उपजे नहीं, कहना किसी का मान नहीं। परन्तु यह दुर्गुण तो दुर्गुण रहे नहीं, जैसे कि बीड़ी पीना पान खाना। मुझे उसके ये तथाकथित दुर्गुण खलते भी नहीं, परन्तु आज उसकी जिद ऐसी लगी कि जैसे मेरी कलाई मरोड़ी जा रही है। मुझे झुंझलाहट आई। मैं बोला—

'तुम तो इस तरह पूछ रही हो जैसे कि कुत्तों ने मुझसे सलाह करने के बाद ही रोना चिल्लाना शुरू किया हो। आदमी के मरने से तो उसके घर वाले रोते हैं, उसके रिश्तेदार रोते हैं। कई आदमी कर्जदार मर जाते हैं तो उनके पीछे वे रोते हैं जिनके रुपये डूब। किसी सेठ का दिवाला निकल जाए और वह मर जाए तो उसके पीछे वे सब लोग रोते हैं जिनके रुपये डूब गए। परन्तु कुत्ता आदमी के लिए किस रिश्ते के नाते रोये, मेरी समझ में आने वाली बात नहीं है। उनकी अपनी ही बात होगी।' मैंने अपनी असमर्थता व्यक्त कर दी।

'परन्तु देखो, ये कुत्ते अब भी रो रहे हैं। मुझे तो डर लग रहा है, यह कुत्तों का रोना बहुत ही असगुनसूचक है। जनता में सुख शांति नहीं रहेगी,' उसने

अपनी रट को नई शब्दावली दे दी।

'क्या होता है रोने से ! सारी जनता रो रही है, सर धुन रही है कि चीजें मिलती नही कीमतें बढ रही हैं। इतने सारे जुलूस, इतना सारा शोर शराबा, मगर क्या असर हुआ कही ? कोई चीज रुकी कही ? कोई हुआ वज्राघात कही ? सारा देश रो रहा है और जनता चिल्ला रही है—त्राहि माम त्राहि माम। परन्तु कही जू भी रेंगी ? मगर चन्द कुत्ते रोते हैं तो कयामत आ जाएगी ? प्रलय मच जाएगी, यह है तुम्हारा सोचना ? कुत्ते रोते हैं तो रोयें, मैं तो उनके पास जाने से रहा और न अनुनय विनय करूँगा कि तुम रोना बद कर दो। अगर कुत्तो म जरा भी समझ होगी तो उनकी समझ में यह बात आ जानी चाहिए कि इस देश मे रोने से या भौंकने से कोई चौकने वाला नही है।' मैंने अपनी तरफ से डाट पिला दी।

शायद मेरी पत्नी को मेरा डाँटना भी भौंकना लगा। वह चुप। थोडी देर बाद कुत्ते भी रोने से रुक गए।

इन कुत्तो की वजह से मेरी नीद हराम हो गई। मैंने लिहाफ खीच लिया और मैं ऐसा अनुभव करने लगा कि मैं एक कैपसूल म बन्द हो गया हूँ। कुत्तो तथा अपनी पत्नी स मेरा सम्पकसूत्र कट गया। मैं सोचने लगता हूँ।

कुत्ते क्यो रोते है ? आदमी क्यो और कब रोता है, यह तो समझ मे आता है, परन्तु ये क्यो रोते है ? मैं ज्योही इस विषय पर सोचने लगता हूँ तो समाधान तो नही मिलता और पुराना सवाल पुराने कर्जे की तरह रिन्यू हो जाता है।

कुत्ता जल्दी क्यो खाता है ? डरता आदमी जल्दबाजी करता है, हो सकता है कि कुत्ता भी डरता हो ! डरता हुआ जल्दबाजी करता है, यह तो तथ्य है पर कुत्ता किससे डरता होगा ? मैं सोचने लगता हूँ।

डरता आदमी लडता है, यह तो मेरा अनुभव है।

आदमी आदमी से डरता है अत आदमी आदमी से लडता है।

कुत्ता कुत्ते से डरता है, अत कुत्ता कुत्ते से लडता है यह तो समझ मे आई हुई बात है। यही नही, भेड भेड से लडती है। गाय से गाय लडती है। लिहाफ के अन्दर मैं देखता हूँ कि भैंस से भैंस लडती है मुर्गे से मुर्गा, और तो और शाति का प्रतीक कबूतर कबूतर से लडता है, चोच भिडाता है। मैंने कई बार शाति के मसीहाओ को मेरे कमरे मे कुश्ती करते हुए देखा है। चोचो से चोचें लडाते हुए, पखो की फडफडाहट करते हुए। मैंने बीच बचाव के दौरान देखा है कि लडाई का मुद्दा या तो कुछ दाने होते हैं या कोई कबूतरी। फिर बेचारे कुत्ते ही बदनाम क्या ? कोई दूसरा कुत्ता न खा जाए इसलिए कुत्ता जल्दी जल्दी खाता है। कुत्ता दरियादिली दिखाए तो किस बूते पर ! कुत्ता भी लडता है पर वे ही दो मुद्दे, रोटी का टुकडा या हड्डी का टुकडा या कोई कुतिया।

पर कुत्ते रोते क्यों हैं ? सवाल सुलझने से पहले नींद आ जाती है।

सुबह उठता हूँ तो देखता हूँ कि ककेई तो अभी कोपभवन से बाहर ही नहीं निकली है।

कुत्तो ने पति पत्नी के बीच दरार डाल दी है मैं इस विडम्बना पर विचार करने लगता हूँ।

मैं सुबह का अखबार लेकर बैठ जाता हूँ। चाय की प्याली पास मे। लबरेज। चाय खतम होने के पहले अखबार निगल जाता हूँ। अखबार निगल जाने के बाद एक पत्रिका के पन्ने पलटने लगता हूँ। यकायक मेरी भागती हुई आखो मे अटक जाती हैं कुछ पक्तिया—

'कुत्तो का राजसी जीवन जिसके लिए इन्सान रश्क करे !'

कोई कुत्ते पालने का काम है। आला नस्ल के कुत्ते। उनके बच्चो का पालन पोषण होता है वातानुकूलित कमरो मे।

मैं कुछ चित्र देखने लगता हूँ। छोटे छोटे पिल्ले फोम के गद्दों पर। नौकर चाकर सेवा में। ओढने को रजाइयाँ। खाने पीने को पौष्टिक आहार। डाक्टरो की पूरी देख रेख।

मैं पूरा विवरण पढने लगता हूँ। पिल्लो की परवरिश जिस राजसी ढग से की जाती है, उसे देखकर तो हर आदमी की इच्छा होने लगती है कि काश! इस मनुष्य योनि के बजाय तो इन कुत्तो जैसी कोई योनि मिली होती तो कितना अच्छा रहता !

मनुष्य योनि भी श्वान योनि के सामने झक मारती है।

पत्रिका रख देता हूँ।

ये कुत्ते के बच्चे! इन्होंने पिछले जन्म मे महान तपस्या की होगी।

ये कुत्ते बड़े मेधावी हैं। कोई बड़ी आत्माएँ कुत्तो के रूप में अवतरित हुई हैं। कुत्तो के इतिहास मे भी कई शानदार पृष्ठ हैं। सारे कुत्ते मेधावी ही रहे हों, ऐसी बात नहीं। गजब की किस्मत भी पाई बहुतो ने। मेरी स्मृति मे कई कुत्ते उभरते हैं। एलिजाबेथ टेलर का नामी कुत्ता जिसकी शादी मे इतना खर्च हुआ कि उसकी शादी के सामने राजकुमारी ऐन की शादी फीकी लगती है। उसकी शादी का वह जश्न मनाया गया कि कुछ कहा नहीं जा सकता। क्या कमाल की किस्मत पाई है उस कुतिया ने जिसस एलिजाबेथ का कुत्ता युग्म होने जा रहा है।

कहते हैं कि एक श्वान प्रदशनी में लीजा का कुत्ता प्रदर्शित हुआ तो लाखों मेमे उमड पडी उस कुत्ते को चूमने के लिए। मालिक ने देखा कि ये मेमे तो कुत्ते को चुम्बन के बहाने चाट जाएँगी। कुत्ते को चुम्बन की फीस लगाई गई। जब एक चुम्बन की फीस दस डालर रखी गई तो हजारों मेमो के हाथ अपने

पर्सों की रस्सिया ढीली करने लग गए। लीजा फिर घबराई। फीस बढाकर सौ डालर की चुम्बन कर दी गई तो भी दस मेम मैदान से नही हटी।

यह भी किस्मत है कुत्ते की। कोई प्रि स चार्मिंग क्या कर ! ऐसा कुत्ता कौन सी मौत मरेगा, क्या कोई ज्योतिषी बतला सकता है ?

यह तो एक ही पृष्ठ है। कुत्तो के इतिहास मे ऐसे कई स्वर्णिम पृष्ठ हैं। जनागढ के नवाब साहब को इतिहासकार चाहे किसी तरह याद करें, पर न्तु जब कोई कुत्तो का इतिहास लिखेगा तो उसके ऐतिहासिक क्रिया कलापो को नजर अ दाज नही कर सकता। उसके राज्यकाल मे कुत्ता की शादी के शुभअवसर पर राजकीय कार्यालयो मे अवकाश रहा। दुल्हा बना हुआ कुत्ता जब बैंण्ड बाजो के साथ जूनागढ की सडको से गुजरा होगा तो दर्शको ने उस कुत्ते के भाग्य की सराहना की होगी। और, कितनी ही देवियो ने उस भाग्यशाली कुतिया की तुलना मे अपन आपको हेय समझा होता। अगर चॉयस का सवाल होगा तो बहुत मुमकिन है बहुत सारी देविया अपने सचित पुण्यकम और कौमाय का अघ्य देकर भी इस प्रकार की कुतिया बनने मे अपना अहोभाग्य समझती।

अगर ये कुत्ते है तो उनका जीना और मरना भी बहुत कुछ ऐसा है जो मनुष्य को नसीब नही होता।

कई कुत्तो ने कई लडाइयो मे महत्त्वपूण भूमिका निभाई और सरकारी तौर पर इनकी सेवाओ का उल्लेख किया गया।

सारी बातो से एक ही निष्कष निकलता है कि सब कुत्ते एक से नही होते। कुत्तो म भी वण व्यवस्था होती है। कई कुत्ते कुलीन होते हैं। इसकी जानकारी लोगो को नही है। यही एक दुभाग्यपूण स्थिति है। कुत्ता धम का रूप होता है, यह तो धमराज ने भी माना है। कुत्ता और धम साथ जाते हैं, बाकी-सब पीछे छूट जाते हैं।

एक फ्रासीसी राजकुमारी को ता आदमी नाम से इतनी चिढ हो गई थी कि वह तो कुत्ता की जाति पर ही फिदा थी।

कुत्ता और आदमी के गुणावगुणा की तुलना की गई तो सभी लोग एक ही निष्कष पर पहुँचे—

कुत्ता आदमी की हर चीज व ट्रिक सीख सकता है—सिवाय एक चीज के। उस खिलाने वाले हाथ को काटने की ट्रिक नही आती। लोगा न खूब सरपच्ची करके देखा। आदमी का इसम कोई सानी नही !

कुत्ते की जाति जिस दिन लोप हुई, वफादारी नाम की चीज भी लोप हुई। यह एक भविष्यवाणी है।

मैं आ तरिक खुशी अनुभव करता हूँ। मेरी आज तक की धारणा बदल जाती है। न कुत्ता हय और न कुत्तो की तरह मरना व जीना। इन सभी चीजो के

बावजूद भी मेरी पत्नी का प्रश्न एक 'आउटस्टैंण्डिग क्लेम' की तरह खड़ा है।

कुत्ते क्यों रोते हैं ? क्यों चिल्लाते है ? सवाल सरल करने के लिए मैं एक सवाल उठाता हू—आदमी भी तो रोते है ? वे क्यों चिल्लाते हैं ? आदमी तो देवता होने का दम भरता है। आदमी का तो रोना शायद यह है कि आदमी और आदमी के बीच भेदभाव क्या ? रंग भेद क्या ? सब आदमी बराबर हैं तो कुलीनता का फिर आधार क्या ?

शायद यही बातें कुत्तों के दिमाग में हों तो। आखिर आदमी और कुत्ते में कोई मूलभूत फर्क तो है नही। सब कुत्ते बराबर हैं—क्या साहब का, क्या सड़क छाप।

अलसेशियन, टेरियर, पोमेरियन वगैरह जाति भेद बेमानी है। हो सकता है, सड़क के कुत्तों ने रात में सलाह कर ली हो, और उन्होंने अपने विरोध के स्वर को रख दिया हो। सीधे कार्यवाही की बात चल रही हो। मगर मेरी पत्नी समझती है कि कुत्ते रोते हैं। रोष के स्वर को लोग रोने धोने के सिवाय और कोई संज्ञा नही देते। मेरी समझ में बात आ गई।

मैंने उसे आवाज दी—'आओ, तुम्हें समझाऊँ, कुत्ते क्यों रोते है।'

उसने मेरी तरफ देखा, मुझे लगा कि वह गुराएगी।

इसी बीच गली में कुत्ते फिर भौंकने लगे। ऐन वक्त पर कुत्तों ने बनी बात बिगाड़ दी। कुत्तों का यही दोष है। समझौता नही करने देते।

बेनकाब सत्य

तब

मानव झूठ भी बोलता तो

सत्य प्रतीत होता था ।

ऐसे ही धीरे धीरे वक्त सरकता गया और आया कलियुग का प्रथमचरण—अभी आदमी झूठ बोलने में परिपक्व नहीं हुआ था पर झूठ म शूगर कोटेड मिलावट प्रारम्भ कर चुका था जो सत्य प्रतीत हो ।

ऐसे ही समय मे एक ब्राह्मण देवता न अपनी सुलक्षणी गह काय मे दक्ष कन्या का विवाह एक ब्राह्मण परिवार के ही एक सुकुमार से निश्चित किया । कुछ समय पश्चात् विश्वस्त सूत्रो से ज्ञात हुआ कि लड़का भ्रष्ट है उसका खान पान गये गुजरे लोगो सा है । यदि यह विवाह सम्पन्न होने दिया गया तो लडकी तथा उसके साथ ब्राह्मण देवता के परिवार को भी निश्चित रौरव नरक भोगना पडेगा ।

शकालु मन लिये ब्राह्मण श्रेष्ठ अपने समधी के द्वार पर जा पहुँचे और अपनी शका स्पष्ट शब्दो मे प्रकट करते हुए बोले—

—सुना है लडका प्याज खाता है ।

—सुकुमार के पिता स्थिति की गम्भीरता को तुर त समझ गये । अपने वश तथा कुल का ध्यान रखते हुए बोले—(यह स्मरण रखते हुए कि असत्य भाषण न हो जाये) हरे हरे । (खाते तो है पर हरे हरे) ।

समधी के धर्म परायण उत्तर से उत्स हित हो ब्राह्मण श्रेष्ठ आगे बोले—

—मास भी खाता है ?—

सत्य को स्वीकार करते हुए उत्तर आया

—श्री श्री । (सिरी सिरी खाते हैं)

—शराब भी पीता है ?

इस अन्तिम प्रश्न का निश्चित उत्तर था

—र (ा) म र (ा) म—(अर्थात—रम से ही गुजारा करता है)

निश्चिन्त हो ब्राह्मण श्रेष्ठ लौट गये पता नहीं—ब्राह्मण श्रेष्ठ के सुकुमार

का विवाह हुआ या नही।

—और अब आया कलियुग का वह चरण—

जब मानव सत्य भी बोलता है

तो झूठ प्रतीत होता है।

मेहमाननवाजी का लुत्फ लेने के इरादे से मित्र के यहाँ पहुँचा ही था कि वहाँ अधेड़ उम्र के सज्जन को बैठे हुए देखा—मित्र ने तपाक् से मुझे गले लगाया और सज्जन की तरफ संकेत करते हुए बोला—

—इनसे मिलिये। माधव प्रसाद शर्मा।

मैंने औपचारिकतावश उनसे हाथ मिलाया।

पिछली बार हमारे यहाँ प्रिंसीपल का इण्टरव्यू देने आये थे शर्माजी। पास ही के कसबे के डिग्री कालेज मे कार्यरत हैं। कल हमारे यहाँ पी० जी० कालेज मे प्रिंसीपल का इण्टरव्यू है—इसलिए तशरीफ लाये हैं। मित्र के सम्पूर्ण परिचय कराने के पश्चात मैंने चुटकी लेते हुए पूछा—हर साल नया प्रिंसीपल रखते हैं क्या ?—

इस बीच शर्माजी पत्रिका के पन्ने पलटने लगे थे मित्र बात को आगे घसीटते हुए बोला

—हालात तो ऐसे हैं कि हर माह बदली होनी चाहिए।

इस वजनदार वाक्य से शर्माजी चौंके और बोले—

—वैसे मैं उनसे मिल आया हूँ।

—सेक्रेटरी साहब से ?

—हाँ।

—क्या कहा उन्होंने ?—सकुचाइये नही—शर्माजी—यह मेरा पक्का लँगोटिया यार—एक जान दो शरीर हैं—आप सारी बात खुलकर बतायें।

—शर्माजी ने अब पैंतरा बदला। चाय आ गई थी। चाय का प्याला हाथ मे पकड़े वे चुस्कियाँ लेने लगे—सेक्रेटरी साहब ने वही कहा जो कहना चाहिए था ?

—आखिर कुछ तो कहा ही होगा—मित्र का उतावलापन अब हद से बाहर हो रहा था।

—शर्माजी ने चाय का प्याला मेज पर रख दिया और इत्मिनान से सेक्रेटरिया अन्दाज मे बोले—

—कि भई—हमे तो किसी को प्रिंसीपल रखना ही है—जो ज्यादा काबिल होगा उसे हम औरों के ऊपर तरजीह देंगे। महाविद्यालय के हालात तो किसी

से छिपे नही हैं—आप अपना देख लीजिये—आना चाहे तो आयें। सारे हालात देखते हुए तथा परिस्थितियां का जायजा लेते हुए आप यदि इन्टरेस्टड हो तो आप कल सुबह साढे दस बजे इण्टरव्यू देन आ जाइयेगा।

फिर शर्माजी थोडा रुकते हुए बोले—

अब केवल तुम ही मुझे महाविद्यालय के हालात के बारे मे फस्ट हैण्ड जानकारी दे सकते हो क्योंकि सबमे पुराने तुम्ही हो ।

मित्र अब आराम की मुद्रा मे बैठ गया मैं भी वही दीवान पर लेट गया था और बातो म रुचि ले रहा था।

मित्र सिगरेट का कश खीचते हुए बोला

—वैस गत वष की तुलना मे हालात और भी बदतर हुए हैं (बदतर शब्द उसने कुछ इस अन्दाज म कहा मानो कोई सम्मान सूचक शब्द हो)—एनरोलमेण्ट के हिसाब से साढे चार हजार छात्र छात्राएँ हैं किन्तु पाच सौ ही ने कॉलेज की फीस अदा की है। मैनेजमट की सबसे बडी परेशानी यही है और पिछले प्रिंसीपल साहब ने भी इसी कारण इस्तीफा दिया था।

—फिर छात्रो को प्रवेश कैसे दिया गया ?—मैंने प्रश्न उछाला।

—एक रुपया देकर फाम रजिस्टर कराये जाते हैं और फिर प्रवेश किया जाता है। अधिकाश छात्रो ने उस एक रुपये को ही वष भर का शुल्क मान लिया। छात्र दबाव आजकल इतना है कि प्रवेश रद्द तो किया ही नही जा सकता।—हाँ फीस जमा कराने की तारीखें निरन्तर आगे बढती रही हैं।—और फिर छात्र भी तो नित्य कॉलेज नही आते।

—उपस्थिति फिर कैसे पूरी होती है ? शर्माजी ने परेशान मुद्रा मे प्रश्न किया।

—जैसे फीस जमा करने की तारीखें आगे बढती जाती हैं—तथा जैसे बिना प्रवेश शुल्क जमा कराय विश्वविद्यालय के परीक्षा फाम भर दिय जाते हैं।

—फीस वसूलने के लिए छात्रो के परीक्षा प्रवेश पत्र क्यो नही रोक लिये गय ?

—आपको तो पता ही है शर्मा जी—विश्वविद्यालय यही है ।

बाबू प्रवेश पत्र लेकर जैसे ही महाविद्यालय की ओर प्रस्थान करने लगे छात्रा ने रास्ते मे ही उनका भार हल्का कर दिया और सभी को घर बैठे प्रवेश पत्र प्राप्त हो गया।

—*ऐसी स्थिति मे प्रिंसीपल को क्या करना चाहिए ?*

शर्मा जी हतोत्साहित हो गये—

—अलावा इस्तीफा देने के वह कुछ भी नही कर सकता ।

—क्या वास्तव में यह बातें सत्य हैं या यूं ही शर्माजी का तुम परेशान कर रहे हो ?

मित्र मेरी बात पर हो हो कर हँस दिया हँसी रुकने पर उसने कहा—

—अरे यार—जो सत्य मैंने उजागर किये हैं वे तो हिमखण्ड की शिखा मात्र हैं।

—क्या मतलब ?—क्या अब भी कुछ बाकी रहता है ? शर्मा जी सत्य को अस्वीकारते हुए बोले।

—हाँ—असली सत्य तो अब प्रकट होने जा रहा है। सुनो—

—परीक्षा के दिन अधिकांश छात्र प्रश्न पत्र और उत्तर-पुस्तिकाएँ लेकर घर चले जाते हैं। और अपनी सुविधानुसार उत्तर पुस्तिकाएँ लौटा जाते हैं। बहुत से छात्रों के नामांक की तो एक से अधिक उत्तर पुस्तिकाएँ जमा हो जाती हैं।

—क्या मतलब ? मैं उछला।

—मित्र ने मुझे बैठाते हुए नम्र शब्दों में कहना शुरू किया—

—लगता है—हजरत अपने एक से अधिक दोस्तों को उत्तर लिख कर उत्तर पुस्तिका जमा करने को कह गये होंगे और मजे की बात इस युग में भी दोस्त सभी सिंसियर निकले।

।

जो परीक्षा केन्द्र पर कर्त्तव्यनिष्ठ छात्र बच रहते हैं उनमें से कोई भी अपनी रिजर्व सीट पर नहीं बैठता। सुविधानुसार गोला बनाकर बैठते हैं। पुस्तकालय या साथ लायी पुस्तकों में से कोई एक छात्र उत्तर बोलता रहता है बाकी छात्र लिखते रहते हैं और चार पाँच कभी कभी छः घण्टे में पुस्तिकाएँ दे जाते हैं।

—हाँ हाँ याद आया यह समाचार तो बी० बी० सी० से भी एक बार प्रसारित हुआ था। शर्मा जी बोले।

—क्या कभी फ्लाइंग स्क्वेड नहीं आता ?

—आता तो है पर दरवाजे से ही लाठी पत्थर जग द्वारा लौटा दिया जाता है। यदि दिलेरी दिखाने का कोई माई का लाल प्रयास करता है तो लाइसेन्स शुदा बन्दूक या पिस्तौल गोली उगलने में चूक नहीं करती।

—परेशान मुद्रा में शर्माजी ने पूछा—

—फिर यहाँ की पुलिस तथा जिला प्रशासन क्या करता है ?

—वह हर मुसीबत में छात्रों के साथ सहयोग करने पर तत्पर रहता है ?

—और पुस्तकालय की क्या स्थिति है ?

—आधी से अधिक पुस्तकें जो टैक्स्ट बुक की तरह है महाविद्यायल के छात्रो के निजी पुस्तकालय की शोभा बढ रही हैं। स्टैंण्ड पुस्तकें उनके विशेष उपयोग की नही है अत अस्पश्य हैं।

स्टॉफ ता सहयोग देता होगा—शर्मा जी बुझे से स्वर म बोले।

—स्टॉफ—स्टॉफ की कुछ मत पूछिये शर्मा जी ! लगभग एक सौ साठ अध्यापक प्राध्यापक तथा साठ के करीब अ य कमचारी ह। इनमे स प्राय तीस प्रतिशत तो पिछले तीन माह मे एक दिन भी महाविद्यालय नही आय है। उनके लिए यहाँ कुछ काम ही नही है। छात्र भी उनके साथ हैं, उनकी वेतन राशि चैक द्वारा उनके बक खाते में जमा हो जाती है।

—बाकी स्टॉफ—?

—शेप स्टॉफ के पास भी छात्रो की अनुपस्थिति मे कोई काय नही रहता, बस आकर हाजरी लगाकर लौट जाते हैं। यहा तक कि पुस्तकालय मे भी उनके लायक कुछ नही होता और आखिर वो पढें भी, तो किसके लिए ?

मित्र ने फिर ठहाका लगाया—

—विभागाध्यक्ष तो होगे— वो क्यो नही रोकते ?

—अरे शर्मा जी, आप भी क्या दकियानसी बात ले आये। यू० जी० सी० ग्रेड के पश्चात सब बराबर अब कौन उनकी सुनता है ? —

यहाँ ता यह हाल है— मैं भी रानी, तू भी रानी कौन भरेगा पानी ?

रात्रि अब काफी गहन हो चली थी। सुबह की प्रतीक्षा मे हम तीनो ही भाजन कर सो गये।

मेरी प्रात आखें देर से खुली फिर भी नीद का नशा इतना था कि मैं ब्रेक फास्ट लेकर फिर सो गया। मित्र शर्मा जी को लेकर महाविद्यालय चला गया था।

दो बजे मित्र के झकझोरने पर आखें खुली—देखा शमा जी अपनी अटैची सँभाल रह हैं ? मैं यह सब दखकर हक्का बक्का रह गया। एक तो नीद का बोझिल नशा तिस पर शर्मा जी का बुझा सा चेहरा ।

फिर भी हिम्मत कर शर्मा जी से पूछा ?

—कहिये कैसा रहा आपका इण्टरव्यू ?

शमा जी बुझे से स्वर मे बोल—

—सिलेक्शन ता निश्चित लगता है। हालात वही हैं जो कल बयान हुए थे। इसके अतिरिक्त सबसे परेशानी वाली बात जो मैंन महसूस की वह यह कि सारे छात्र नेता हम प्रत्याशियो के सामने ही सचिव महोदय का डांट गये—कि सिलेक्शन सूझ बूझ से किया जाये जिससे हम बाद मे परेशानी न हो। ऐसे हालात मे अ य प्रत्याशी तो वही अपनी असमथता प्रकट कर गय।

और आप आप ज्वायन करेंगे या नहीं ?

—मैं अपना मानस नियुक्ति-पत्र के बाद बताऊँगा कि यहाँ आऊँ या नही। —शर्माजी दीघ निश्वास लेकर मृतप्राय शब्दो मे बोले।

भोजनोपरात शर्मा जी भी चले गये और मैं भी अपन इस सुखद प्रवास के बाद लौट आया। पता नही—शर्मा जी ने ज्वायन किया या नही।

चमचा-सूत्र

ओम श्री चमचाय नम ।

अथ श्री चमचा सूत्रम् ॥1॥

टीका—हे चमचा साहब आपको नमन हैं। अब मैं तो श्री चमचा सूत्र का शुभारम्भ करता हू ।

शका—चमचा नाम के आगे 'श्री' क्यो लगाया गया ?

निवारण—चमचा एक खतरनाक जन्तु है, अत इसे असामान्य सम्बोधन दिया गया है ?

अहर्निश सेवायाम् ॥2॥

टीका—मेरे योग्य सेवा यह चमचे का वेद वाक्य होता है।

शका—इस प्रकार चमचा हर समय काय को करने के लिए कैसे प्रवृत्त रहता है ?

निवारण—चमचा हर समय अपनी कमर मे 90 अश का कोण बनाकर खडा रहता है। यह मुद्रा चमचे के लिए अत्यन्त प्रभावशाली वस्तु है। सेवाभावी ही चमचे बन सकते हैं।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव ।

त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ॥3॥

टीका —चमचे का आराध्य ही उसके लिए माता पिता, बन्धु और मित्र होता है।

शका—चमचे के असली बधु बान्धव क्या नही होते ?

निवारण—वत्स तुम बडे भोले हो। चमचा उन्ही के गुण गाता है जिनसे कुछ लाभ लिया जा सकता है। अत चमचे के आराध्य ही उसके लिए सब कुछ होते हैं।

यावत जीवेत सुखम जीवेत ।

ऋणम् कृत्वा घृतम लगावेत ॥4॥

टीका—महर्षि चार्वाक के इस सिद्धान्त का चमचे अक्षरश हैं। जब तक वे जीते हैं, सुख से जीत हैं। ऋण लेकर

लगाते है, यानि आराध्य को खुश रखते हैं ।

शका—क्या शुद्ध घी उपलब्ध होता है ?

निवारण—पुत्र ! शुद्धाशुद्ध की चर्चा व्यर्थ है। आजकल अफसर और आराध्य दोनो ही शुद्धता के चक्कर मे नही पडते ।

सत्यम ब्रूयात प्रियम ब्रूयात ।
ना ब्रूयात सत्यम अप्रियम ।।5।।

टीका—सत्य बोलो प्रिय बोलो, अप्रिय सत्य को मत बोलो ।

शका—क्या चमचे सवदा सत्य सभाषण ही करते है ?

निवारण—वत्स—चमचे केवल ऐसी बातें करते हैं जिससे उनके आराध्य प्रस न रहे । सत्यासत्य के वथा प्रपच मे वे नही पडते ।

प्रतिशका—ऐसी स्थिति में वे अपन आराध्य को गुमराह करते होगे ?

प्रतिनिवारण—आराध्य जानते हैं कि चमचे का काय करना अत्य त आवश्यक है, अ यथा वही चमचा विरोधी खेमे का प्रमुख चमचा बनकर उनकी पोल खोल सकता है ।

अत चमचा हमेशा मधुर बोल ही बोलता है ।

औपधाथ सुमत्रणाम बुद्धैश्चैव चमचानाम ।
असाध्य नास्ति लोकेऽत्र यद ब्रह्माण्डस्य मध्यगम ।।6।।

टीका -औपधि अथ सुमत्र तथा चमचे की बुद्धि स इस ससार म सब कुछ सम्भव है ।

शका—क्या चमचे की बुद्धि बहुत तीव्र होती है ?

निवारण—सवाल तीव्रता का नही चमचत्व का है, जो असम्भव को सम्भव कर देता है ।

नि दतु नीति निपुणा यदि वा स्तुव तु ।
लक्ष्मी स्थिरा भवतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगा तरे वा ।
चमचात्पथ प्रविचलन्ति पद न चमचा ।।7।।

टीका—चाहे कोई नि दा करे चाहे स्तुति, चाहे पैसा आये या जाय, मत्यु चाह आज हो या सौ वप बाद, चमचे अपने चमचा माग पर ही चलत रहते हैं ।

शका—क्या चमचे लक्ष्मी की अपेक्षा कर सकते हैं ।

निवारण—कदापि नही व कोई स्वाभिमानी थोडे ही हैं जो लक्ष्मी की उपेक्षा कर दें, लेकिन वे अपना माग इस तरह बनाते हैं कि सभी सुखो का उपभोग निशक होकर कर सकें ।

मूर्खाणाम् पण्डिता द्वेष्या निर्धनानां महाधना ।
व्रतिन पापशीलानाम स्वाभिमानी नाय चमचा ॥8॥

टीका—मूर्ख विद्वानो से, गरीब अमीरो से, पापी पुण्यात्माओ से तथा चमचे हमेशा स्वाभिमानी व्यक्तियो से द्वेष रखते है।

शंका—इस द्वेष का कारण क्या है ?

निवारण—इसके दो प्रमुख कारण है। आज के युग मे चमचे स्वाभिमानी से डरते हैं परन्तु उन्हे अपनी राह का रोडा मानते है। साथ ही अफसर और आराध्य भी स्वाभिमानी को नीचा दिखाने के लिये चमचा की मदद लेते हैं। अत चमचे हमेशा स्वाभिमानी से द्वेष करते है।

चमचा हि देशस्य महा रिपु ॥9॥

टीका—चमचे देश के सबसे बडे शत्रु हैं।

शंका—चमचो को देश का शत्रु क्यो कहा गया है ?

निवारण—क्योकि चमचे अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए देश की परवाह नहीं करते है। कई बार वे अपने भले के लिए देश को गर्त मे ले जाते है।

सर्प क्रूर चमचा क्रूर सर्पात क्रूरतर चमचा ।
सर्प शाम्यति मन्त्रेण चमचा नव शाम्यति ॥10॥

टीका—सर्प और चमचा दोनो क्रूर होते हैं। चमचा सर्प से भी क्रूर होता है। सर्प को मन्त्र से वश मे किया जा सकता है, लेकिन चमचे को नहीं किया जा सकता है।

शंका—चमचे की तुलना साँप से क्यों की गयी है ?

निवारण—वास्तव मे चमचे आस्तीन के साँप होते हैं। जिन्हें दूध पिला कर बडा किया जाता है। लेकिन कृतघ्न होने के कारण वे अपने आराध्य को ही डसते हैं।

यथैकेन तु हस्तेन तालिका [illegible]।
तथैव चमचा [illegible] ॥11॥

टीका—जिस तरह एक हाथ से ताली नहीं बजती है इसी प्रकार चमचे के बिना कर्म [illegible] किया जा सकता है।

शंका—चमचे के बिना [illegible] क्यों नहीं मिल पाता है ?

निवारण—तुम बड़े भोले [illegible]। सामान्य व्यक्ति [illegible] तक नहीं पहुंच सकता है, अत अपना कार्य [illegible] चमचे का सहारा लेना पडता है। चमचे [illegible] माध्यम है।

यो भजते मानवा ।
ते चमचे भवेत ॥12॥

टीका—जो व्यक्ति इसका भजन करते हैं वे चमचे बनते हैं ।

शका—क्या सभी मानव चमचे बनना चाहते हैं ?

निवारण—नेकी और फिर पूछ पूछ । चमचा बन जाना कोई आसान काम नही है । अत सभी बनना चाहते हैं ।

सुफलम प्राप्नुवन्ति प्रात भजामि ये ।
अभिलाष दाक्षम लक्ष्मी भवेद दासी, चमचाय नम ॥13॥

टीका—जो चमचा, इस सूत्र का पारायण सुबह् उठकर करेगा, उसे सुफल, यश, लक्ष्मी-प्राप्ति होगी तथा उसकी अभिलाषायें पूण होगी ।

शका—जो इस सूत्र का पारायण नही करेंगे उनका क्या होगा ?

निवारण—वे इस नरक मे सड सड कर मरेंगे ।

इति श्री चमचा सूत्रम ॥14॥

टीका—अब मैं चमचा सूत्र का समापन करता हूँ ।

8945

एक फिल्म महान कवि पर

आखिर वह बडे परिश्रम के साथ अपनी कहानी तैयार करके निर्माता गोरखधधी के घर पहुँचा। गोरखधधी खार मे रहता था चदानी सेठ की बिल्डिग मे, तीसरे माले पर। समय उसने पहले से ही तय कर लिया था, अत गोरखधधी से मिलने जुलने मे उसे कोई आना कानी नही सुननी पडी। बल्कि उसने मधुर मुस्कान के साथ उसका स्वागत किया, 'वैल कम मिस्टर सुधेश! हम आपकी ही प्रतीक्षा कर रहे थे।' सुधेश ने सोचा कि आज गोरखधधी का मूड काफी अच्छा है। आज वह सदा की तरह रूखा रूखा नहीं लग रहा है। उसका चेहरा ताजगी म डूबा है।

वह भी मुस्कराया—एक अर्थहीन मुस्कान।

थोडी देर मे वह गोरखधधी के ड्राइग रूम मे था, जहाँ पहले से ही निर्देशक बोतलवाला, हीरोइन मस्तानी, सगीत निदेशक चोरन और शोरन बैठे थे। सब ने सुधेश का नजरो से स्वागत किया। औपचारिक परिचय देते हुए गोरखधधी ने सिगरेट सुलगा कर कहा, 'सुधेश जी हिन्दी म फेमस लेखक हैं। इन्होने कई पुस्तकें लिखी हैं। वे पुस्तकें पाठको द्वारा काफी पसद की गई हैं। हमने इनसे एक हिन्दी के महान कवि की लाइफ पर कहानी लिखवाई है। कवि भी ऐसा जो निराला कहलाता है।'

निर्देशक बोतलवाला बीडी सुलगा कर उसका कश लेने लगा पर बीडी तुरन्त बुझ गयी। उसने फिर बीडी जलाई और कहने के लिए उसके होठ खुले ही थे कि बीडी फिर बुझ गयी। उसे बडा गुस्सा आया, 'कम्बखत जलती ही नही। बार बार बुझ जाती है।'

इस पर नायिका अठारह वर्षीया मस्तानी झट से बोल पडी मिस्टर बोतल वाला, बीडी से पहले दिल जलाइए।'

चालीस वर्षीय बोतलवाला पारसी स्टेज के हीरो की तरह स्वर लम्बा करके बोला—'वह तो जल चुका है, अब तो उसको बुझाने वाला चाहिए।'

गोरखधधी न मेज बजाते हुए कहा 'प्लीज चुप हो जाइए, हलकी फुलकी बातचीत का यह समय नही है। गभीरता से सुधेश जी की कहानी सुनिए'

सब चुप हो गए। सन्नाटे की हल्की परत छा गयी। सिफ हल्का हल्का धुआँ कमरे मे फैल रहा था।

सुधेश ने फाइल खोलकर पढी—यह कहानी सूयकान्त त्रिपाठी 'निराला' की है। सूयकान्त त्रिपाठी का जीवन सघष की एक कहानी है। दुखो व अभावो की एक खुली किताब है। इन्होने हिन्दी कविता को नया स्वर और नयी दिशा दी थी। और लगभग एक घटे तक सुधेश श्री सूयकान्त त्रिपाठी निराला' का जीवन वृत प्रमाणिक तथ्यो के साथ प्रस्तुत करता रहा। जब उसने सारी कहानी सुनायी तो उपस्थिति मे एक अजीब सी उदासी आ गयी। एक गूगापन छा गया।

गोरखधधी ने सिगरेट का लम्बा कश लेकर उसे बुझाया और कहा, 'यदि यही हिन्दी के महाकवि निराला की कहानी है तो बन गई फिल्म! इसम सिफ नेहरू जी वाला ही प्रसग काम का है वर्ना सब गुड गोबर।

बोतलवाला बीडी का तोडते हुए बोला 'खोदा पहाड और निकली चुहिया। गोरखधधी जी, आप क्या क्या समा बाँधते थे कि वह एक वन्डरफुल कहानी होगी? परन्तु इसमे न तो कोई क्लाइमेक्स है और न पब्लिक को पकडने का मसाला।'

मस्तानी ने तो अपना निणय ही सुना दिया। 'सेठ गोरखधधी, मैं आपकें इस फिल्म मे काम नही करूँगी। इसमे तो कवि की पत्नी तुरन्त मर जाती है। प्रेम का एक भी सीन नही है।'

'और दो गाना कहाँ होगा?' सगीत निर्देशक चोरन शोरन बोले।

गोरखधधी ने झुझलाकर अपना हाथ ऊँचा किया। सबको शात करके कहा, 'सुधेश जी बेचारे खालिश साहित्यिक लेखक हैं। फिल्मी लटके झटके इन्हें नही आते हैं। निराला हिन्दुस्तान का माना हुआ शायर है। यह हिन्दी पाठको मे बहुत ही पापुलर है। हम उस चटपटा बना लें तो यह चित्र बाक्स आफिस हिट हो सकता है। '

काफी वाद विवाद क बाद तय हुआ कि कहानी को फिल्म के हिसाब स बना लिया जाय।

कॉफी का दौर चला।

सबसे पहले यह प्वाइन्ट नोट किया गया—महाकवि निराला ने जीवन स लेकर साहित्य रचना तक मे इकलाब किया। उनके बाल लम्बे थे। वे अत्यन्त ही सुन्दर थे। ब्राह्मण होकर मास मछली खाते थे। एक्स्ट्रीम इकलाबी।

बोतलवाला न नया सुझाव दिया, आपकी बातों स लगा कि कवि निराला

वास्तव मे मतवाला था। सुधेश जी, देखिए, किसी भी सच्ची घटना का फिल्मीकरण ऐसे होता है। जस आपका महाकवि निराला एक हिप्पी टाइप का लडका है। वह अपने साथियो, जिनमे कुछ लडकिया भी हैं, को लेकर नदी के किनारे बैठा है। शराब, गाजा, चरस के दौर चल रहे हैं। क्योकि यह प्रामाणिक है कि निराला के बाल लम्बे थे इसलिए वह हिप्पी था। फिर लडके लडकियाँ नाचते हैं।

शोरन मेज पर थपकी मारकर बाला—'क्या हाईक्लास कोरस साग की सिचुएशन है! हिट साग। निराला, अपनी मस्ती मे है। गीत गा रहा है। अपना लिखा गीत गाल गाल गाल माल माल माल अपना नही रे हो हा सपना फिर मिलेंगे—

गोरखधधी ने कहा, जब गाना खत्म हो जाय तो एक शानदार आरिजनल आइडिया और होना चाहिए।'

सुधेश ने पूछा, 'किस वात का।

'हीरोइन से पहली मुलाकात का। ऐसी पहली टक्कर हो कि सभी लोग चक्कर मे आ जाएँ?'

'परन्तु यह ता उनके जीवन म है ही नही। सुधेश ने विरोध किया।

'अरे भाई सुधेश जी, फिल्मो मे वही हाता है जा जीवन म नही होता। फिर हम जिस ढग से महाकवि के चरित्र को प्रस्तुत कर रहे हैं वह उसको अमर बना देगा।' बोतलवाला ने गम्भीर होकर कहा।

सगीत निर्देशक चोरन ने कहा, मेरे दिमाग मे एक खयाल आया है।'

'क्या?'

'कव्वाली का एक कम्पीटीशन करा दें।'

'कवाली उस एटमास्फियर मे नही जच सकती।' गोरखधधी ने कहा, 'वह हिन्दी का शायर है।'

'आ गया, आ गया।' बोतलवाला बडी नाटकीयता से बोला मेरे दिमाग म एक आइडिया आ गया है। चूकि प्रेम का आरम्भ नये ढग से हाना चाहिए सो हमारा शायर नायक जगल मे चला जाता है वह अकेला है जगल मे शेर दहाडता है शायर कापता है तभी शेर की जगह एक लडकी निकलती है, लडकी देखते ही वह मुग्ध। वह प्रेम का इजहार करती है उसको अपनी बाँहों मे भरने लगती है। हमारा त्रिपाठी बिदके हुए घोडे की तरह बिगड जाता है। वह तडातड दो चार चाटें छोकरी का मारता है। छोकरी हँसती है। वह भी हँसता है। फिर उस गले लगाकर कहता है मैं तुम्हें प्यार करता हू। फिर आपने मुझे मारा क्या? छोकरी पूछती है। त्रिपाठी जवाब देता है, 'यह मेरे करने का तरीका है। छोकरी कहती है एकदम आरिजनल निराला '

गोरखधंधी ने मेज पर मुक्का मारा, 'वाह क्या घाँसू आइडिया है, व डरफुल निराला उसके प्यार करने का तरीका निराला है, इसलिए उसका नाम भी निराला पड जाता है। बस यही से श्रीमान सूयकान्त त्रिपाठी 'निराला' हो जाते हैं।'

सुधेश ने फिर विरोध किया, 'सेठ जी, यह तो त्रिपाठी जी का उपनाम था। साहित्य रचना मे उ होने जो क्रान्तिकारी कदम उठाये, उसके लिये ही उ हें लोग निराला कहते है।'

बोतलवाला ने कहा, 'सुधेश जी, फिल्म मे हर बात के पीछे कोई ठोस कारण होना चाहिए। आप देखेंगे कि इस आइडिया से सारे दशक उछल पडेंगे और आपके निराला अमर हो जायेंगे। लोग प्रेम करने के इस तरीके को अपनायेंगे। प्रयोग मे लायेंगे?'

शोरन और घोरन एक साथ बोले, 'यहा एक दो गाना होना चाहिए। किशोर और लता का। हम ऐसा फडकता म्यूजिक देंगे कि लोग पर्दे फाड देंगे। कुर्सियो पर उछलने लगेंगे।'

बोतलवाला ने फिर बीडी सुलगाकर कहा, 'एक नाम कहानी मे और आया था डा० पन्त जी। वाह सुधेश जी, यह पन्त जी कौन हैं? कोई अच्छे मित्र हैं क्या अपने हीरो के।'

'जी, पन्त जी हिन्दुस्तान के महान कवि है। उन्हें एक लाख का पुरस्कार भी मिला है।'

बोतलवाला ने चुटकी बजायी, 'गुड। आयी न, नयी बात। हमारा नायक निराला की हर बात निराली होती है। वह सम्मेलनो म नही जाता, वह अफसरो की जी हुजूरी नही करता, वह मिनिस्टरों के दरवाजे नही खटखटाता। नतीजा यह निकलता है कि रोटियो के लाले पड जाते हैं। प्रेमिका दुखी, वह अभाव मे रहना नही चाहती वह उसे बार बार नौकरी करन को कहती है पर निराला तो निराला ही ठहरा। प्रेमिका मस्तानी सुनो मस्तानी तुम्हारा फिल्म म यही नाम रखेंगे। मैं कह रहा था एक दिन निराला को बुखार आ जाता है, दवा के पैसे नही हैं, करे तो क्या? बेचारी मस्तानी एक दिन भागकर प त जी के पास जाती है। पन्त जी उसे देखते ही लुट जाते हैं।' अपनी बात को खत्म करके बोतलवाला ने सुधेश से कहा, 'भाई सुधेश जी, यहाँ मैं आपके उस प्वाइट को पकड रहा हूँ जिसम आपने पन्त जी को बैचलर बताया है। भाई आजीवन कुवारा आदमी तभी रह सकता है जब उसने कही चोट खायी हो। चोट भी कौन सी, प्रेम की असफल प्रेम की मस्तानी को देखते ही पन्त भाई पन्त जी की जगह मे प्रीतम कर रहा हूँ प्रीतम की सास रुक जाती है। फिर वह पूछता है, आप?' मस्तानी से बोला नही जाता है। वह प्रीतम

को एकटक देखती है। कट क्लोज अप प्रीतम पूछता है आप कौन हैं क्यो आयी हैं कही मैं सपने मे सौन्दर्य की देवी को तो नही देख रहा हूँ। कट

कैमरा पन होता है मस्तानी पर। क्लोज अप शाट मस्तानी रो रही है। रोते रोते कहती है। भाई साहब, आपके मित्र की हालत खराब है मैं निराला की प्रेमिका हूँ। प्रीतम के हृदय पर आरा चल जाता है। दिल के हजार टुकड़ हो जाते हैं। उसे लगता है कि वह बड़ा ही बदनसीब है। मस्तानी कहती है, जल्दी चाहिए। प्रीतम उसकी बडी सवा करता है। फिर निराला को रेडियो पर गीत गाने के लिए राजी करता है। सड साग

शोरन न गदन हिलाकर कहा, 'क्या सिच्चवेशन निकाली है। दर्शक रो पड़ेंगे।'

चारान अँगुलियाँ थपथपा कर कहा वाह वाह, मार गये बोतलवाला जी, आज मेरी तरफ से बोतल खुलेगी। क्या कहानी को टन मारा है।

गोरखधधी न सिगरेट पीते हुए कहा, 'सिल्वर जुबिली फिल्म। यही यही तो गोल्डन जुबिली करेगी। सिफ कामेडी नही आयी है। सुधेश जी, कोई आइडिया दीजिए न ?'

सुधेश ने गुस्सा पीते हुए कहा, 'क्या आइडिया दू आप तो ओरिजनल कहानी का सत्यानाश कर रहे हैं ?'

बोतलवाला बोला, लो बोलो। यदि हमारी बातें ही आपकी समझ मे आ जाती ता सुधेश जी अभी आपके पास कार होती। इम्पाला कार, समझे।'

'लेकिन इस कहानी को लोग देखना पसन्द नही करेंगे। अपने प्रिय महान कवि के प्रति इस तरह की बचकानी बातें सरकार भी सहन नही करेगी।'

क्यो सरकार को क्या तक्लीफ हो रही है ?'

निराला एक महान कवि था।'

'अर लास्ट मे पडित जी से उसे पद्मश्री दिलवा देंगे।' गोरखधधी ने कहा।

'पर यह कहानी उनके जीवन ।'

अव मस्तानी बोली, 'जीवन की परवाह नही दशकों की परवाह कीजिए। सुधेश जी यह कहानी हिट होगी, आपका रेट पचास हजार हो जाएगा।'

'मैं इस कहानी पर अपना नाम नही दूगा।'

बोतलवाला न कहा—'कोई बात नहीं। हम कहानीकार की जगह स्टोरी डिपाटमेंट लिख देंगे। सभी अडचनो से बचने के लिए शुरू और आखिर मे लिखा देंगे कि इस कहानी का सम्बन्ध किसी भी जीवित या मृत व्यक्ति स नही है। यह एक सवथा काल्पनिक कहानी है अब कौन सी समस्या रह जाती है।'

गोरखधधी ने अपनी जेब मे से दस दस रुपयो की दो गड्डियाँ निकालकर

कहा, सुधेश जी, आप अपने पैसे लीजिए और आराम से रहिए।'

'मैं ऐसे पैसों पर थूकता हूँ' और वह उठ कर बोला, महाकवि मुझे क्षमा करना। पता नहीं, ये नोट तुम्हारी क्या क्या दुर्गत बनायेंगे।'

वह बाहर आ गया।

बोतलवाला बोला, 'मूर्ख कहीं का, चल अब हम आगे बढ़ें। कहानी का अन्त तो बाकी ही है।'

एक कुत्ते की मौत

'बना मगर सात अद्धे ।'

सात अद्धे यानी सात आधे प्याले चाय । कोटगेट के अन्दर घुसते ही दाहिनी तरफ एक पतली सी चाय और पान की दुकान है । इस जगह बहसिया लोग अधिक आते हैं और आधा प्याला चाय से पर्याप्त ऊर्जा प्राप्त कर बेइन्तहा फेफड़ो की वर्जिश कर काफी रात बीतने पर अपने अपने घासलो को लौट जाते हैं । अधिकाश सवाद दुकान के आगे समानातर पडी लचकीली बेंचो पर बैठ कर होते है । मुद्दा की यहा कमी नहीं, ठीक उसी प्रकार जैसे इस शहर के रचनाकारो की कोई गिनती नही । बहसें शीघ्र ही प्रलाप मे बदल जाती हैं जिनका प्रारम्भ तो होता है लेकिन मध्य और अन्त नही । फिर भी इन्हें 'क्लासिक' की सज्ञा दी जाती है क्योकि यहा पर जमने वाले लेखको का दावा है कि सुकरात के बाद सवाद और कही नही हुए । खैर। उस रात एक गोष्ठी से लौटी भीड के सात सदस्य यहा आकर जम गए थे ।

जाहिर था कि वे एक पुस्तक का विमोचन करके लौटे थे और काफी विचार मथन हो जाने के बावजूद भी अभी अघाय नही थे ।

— यार, 'दस चेहरे' स वाक्यी मतलब क्या है ?'

—'क्यो ? शीर्षक पसन्द नही आया ।'

—'पसन्द तो आया पर समझ म नही आया ।'

— लो भाई, इसे समझाओ । तीन घन्टे गोष्ठी मे बैठा लेकिन शीर्षक समझ मे नही आया ।

—'नही । ये बन्धु ठीक कह रहा है । इसका शीर्षक गधे की सूड होना चाहिए था ।'

—गधे की सूड ? वो कहा से आयगी ?

—'कही से भी आए । जब एक आदमी दस चेहरे लगा सकता है तो गधा एक सूड नही लगा सकता ?'

—'लगा तो सकता है । मगर उस सूड को उठायेगा कैसे ?"

—'कैसे भी उठाये ।'

—'सडक पर घिसटती चलेगी ।'

— यार, गदभ जी आयेंगे खूब ।'

—'क्या कहने ! और जब राग छेडेंगे तब सूड मे होते हुए स्वर ऐसे निकलेंगे जैसे रायफल की नली म से गोली ।'

— मारो गधे की सूड को गोली । कही इस 'दस चेहरे' का रावण के दम चेहरो स तो कोई सम्ब ध नही है ।'

—'उस समय ऊँघ रहा था क्या ? बात चली थी न ! हरेक आदमी के कई चेहरे हाते हैं । पाँच भी हो सक्ते हैं और दस भी ।'

— लेकिन दस से अधिक नही होने चाहिए ।'

—'क्यो ?

—'अरे भुस, दस से अधिक का बोझ नही उठ पायेगा । ये सीमा तो रावण ने ही बाध दी थी ।

— इतने चेहरो की आखिर जरूरत क्या है ?

— जरुरत वाला को है जरूरत । एक से खाओ, एक स पियो, एक से गाली दो, एक स प्रवचन, एक पर घृणा हो, एक पर प्यार एक रगदार हो, एक बदरग या बेरग, एक पर अमीरी हो, एक पर गरीबी ।

—'ठीक है, लेकिन यह सब तो एक चेहरे पर भी हो सकता है ।

— तू चाय पी । आज तेरा भेजा यूनान से स्पार्टा की ओर चला गया है । आज तू ज्ञान की बातें नही समझेगा ।'

— 'यार, बहस तो पते की कर रहा है । इसे जरा टन देते हैं । य बताओ आज तक के इतिहास म कोई ऐसा मनुष्य हुआ है जिसके केवल एक ही चेहरा हो । अपने युगपुरुपा के नाम ही लें —राम, कृष्ण, कण, अजुन, द्रौपदी, सीता, बुद्ध, कौटिल्य, गाधी, नेहरू और बाहर के भी मसलन ईसा मसीह, नेपोलियन, हिटलर, जकी, कनेडी आदि आदि ।

— सब हस्र मुखी थे ।'

—'तभी तो जटिल है । आसानी से समझ म नही आते । और समझ म यदि आ जायें तो महापुरुष कैसे कहलायें !'

—'नैतिक दृष्टिकोण से क्या यह उचित है कि मनुष्य बहुमुखी बने यानी उसे कई चेहरे लगाने पड जायें ।'

— नैतिकता निधनो और कमजोर व्यक्तियो का घिसा पिटा सम्बल है । धम और नैतिकता के प्रसग बासी पड गए हैं । नीत्शे ने दाना को बहिष्कृत कर दिया है । और हाँ, वह यह भी मानता है कि प्रत्येक महान अथवा सक्षम पुरुष के कई व्यक्तित्व होते हैं । वह समय और स्थिति के अनुसार अपने को बदलता रहता है ।'

—'फिर तो रावण के दस चेहरे वाली बात बहुत अर्थगर्भित और प्रतीकात्मक है। एक व्यक्ति मे दस व्यक्ति, दस विभिन्न प्रवत्तिया एक शारीरिक ढाचे मे।'

शायद यह बहस और चलती या इस बहस म से कोई अन्य बहस जन्म लेती, लेकिन तभी सभी का ध्यान फुटपाथ के नीचे सूखी नाली म पडे हुए एक काले कुत्ते पर गया। तब तक ऐसा लग रहा था मानो वह वहा पडा सो रहा था। लेकिन जब उसने अपनी पिछली टागो को उठाकर कू कू की मरी सी ध्वनि निकाली तब ध्यान उसकी ओर गया।

भवर न अपने आसन पर बठे, पान पर कत्थे की डडी फिराते हुए कहा—आजकल कुत्तो पर काल आ गया है।'

तभी सडक पर चलते दो व्यक्ति और वहा रुक गय। उन्होने बताया कि पाँच गिडक और आगे मरे पडे है। नगरपालिका के भगी रसगुल्लो मे जहर मिला कर इन्हे खिला गए है। कल सुबह तक पचासियो चित मिलेंगे।

नाली म पडा कुत्ता जीवन के लिए अन्तिम सघप कर रहा था और वहा इकटठे सभी व धु मत्यु के अतिम प्रहार का क्षण देखने के लिए टकटकी लगाकर उसे देख रहे थे। कुत्ते की दोनो पिछली टागें थरथरा रही थी और वह उठकर भाग जाने का भरसक प्रयत्न कर रहा था। एक बार फुटपाथ की कोर तक उसका मुह उठा लेकिन पलक झपकते ही वह फिर लुढक गया। उसका समूचा शरीर ऐंठन का शिकार हो गया था। धीरे धीरे उसकी कू कू भी बन्द हो गयी लेकिन टागें अभी भी काप रही थी।

— यार यह तो अत्याचार है।'

— खत्म ही करना है तो इन्हें एक साथ पकड कर शूट कर दें।'

— दिस इज टाचर।

— जानवर उसी तरह मरता है जैसे आदमी। देखो! अपनी मृत्यु का प्रतिदश्य।

— ऐ सैयद! देख, मालिनो के चबूतरे पर गेंदे की फूलमालाएँ पडी हैं। उठाकर असमय ही क्रूर काल के मुह मे जाने वाले इस कुत्ता शरीफ के गले म उन मालाओ को डाल दो। हम सब इसकी मौत के साक्षी हैं। आदमियो के शव के ऊपर तो पुष्प सभी चढाते हैं। आज, कुत्ते को भी यह सौभाग्य मिलना चाहिए। ऐ भाई 'दुरह' तुम भागकर सिटी लाइट वाले फोटोग्राफर को ले आओ। कुत्ते की अतिम विदाई के चित्र हम अपने कमरो म टागेंगे।'

यह एकत्रित रचनाकारो के अगुवा की आवाज थी। सयद ने भावनाओ का आदर करते हुए फूलमालाएँ उठाकर कुत्ते के ऊपर डाल दी। गदन चूकि सडक म चिपकी हुई थी, इसलिए कोशिश करने पर भी वह उसकी गदन म हार नही

डाल सका।

—हम सभी इसी प्रकार मरेंगे।'

—यानी एक कुत्ते की मौत।'

—'अपनी मौत मगर इस कुत्ते की तरह ही। शायद मरने से पहले हम टिटनस हो जाये और समूचा शरीर इसी प्रकार ऐंठ जाये। शब्द हो लेकिन जीभ पथरा जाय।'

—मत्यु का भव्य साक्षात्कार।'

—भव्य नहीं। साधारण, अति साधारण साक्षात्कार। आज की तारीख मे भव्य क्या है ? न जन्म भव्य है, न मत्यु भव्य।'

—'आज दोपहर मे ये कुत्ता भाग रहा होगा।'

—'काट भी रहा होगा। इस शहर म हाइड्रोफोबिया के केसेज सबसे अधिक होते हैं।'

—'इसका यह मतलब तो नहीं कि कुत्तो को इस बबरता से मारा जाये कि प्राण निकलन मे इतनी तकलीफ हो।'

—'वी आर गेटिंग सेंटिमन्टल। बेकार के कुत्तो को खत्म कर ही देना चाहिए।'

—व्हाट अबाउट बेकार के आदमी ? व्हाट अबाउट वी ? हम भी खत्म कर देना चाहिए।'

—'तुम फिर भावुक हो रह हो। यह समस्या का हल तो नहीं है।

—मारो, लेकिन बस्ती से दूर ले जाकर तो मारो। इस तरह मौत का तमाशा तो न बने।'

—'मौत जिन्दगी का अतिम अनुष्ठान है। उसका जश्न तो मनता ही है।'

गले मे कैमरा डाले फोटोग्राफर दुरुह की साइकिल से उतरा। उसके लिए यह नितान्त नया अनुभव था। साहित्यकारो और उस कुत्ते—दोनो को उसन एक ही दृष्टि से देखा और 'जय भरो' से सभी का अभिवादन किया।

—बन्धु कुत्ते की धौकनी अभी चल रही है। जल्दी म तुम चित्र खीच डालो।

फ्लैश की रोशनी चार बार कुत्ते के शरीर और उपस्थित बन्धुओं के चेहरो पर पडी और सभी जसे ऋण मुक्त हो गए। भवर ने तब तक जर्दे और मसाले के पान थमाने शुरू कर दिए थे। पान मुँह म दबाकर वे लोग फिर कुत्ते के चारो ओर आकर खडे हो गए।

—'वाह री जिजीविषा। अभी तक इसका दम नहीं निकला है।'

यह कहकर 'दुरुह' ने पान की दुकान से बाल्टी म पडा लोटा उठाया और कुत्ते के मुह पर पानी की धार छोड दी।

ये ले तपण हुआ। जाते जाते गगाजल पीता जा।'

पानी पडते ही कुत्ते के शरीर की सारी ऐंठन दूर हो गयी। पिछली उठी टागें धीरे से जमीन पर आकर टिक गयी। कँपकँपाहट समाप्त हो गयी। पेट थोडा फूल गया था। मालूम ही नही पडा कि उसकी अतिम सास कब निकल गयी।

'गया। निजात मिली।'

सभी ब धु फिर बेंचो पर आकर बैठ गए थे। इस बार आठ अद्धो (आठवा फोटोग्राफर था) का आडर दिया गया था। शहर के कुत्तो के साथ साथ बात अब चूहो पर भी होने लगी थी। कुत्ते और चूहे, इनके अलावा शहर मे है ही क्या ?

—'यार! आज तक किसी भी साहित्यकार ने अपना नाम कूकर अथवा मूषक रखा है ?'

—'नही।'

—'क्यो ?'

—'शायद इसलिए कि इन दोनो की उम्र बहुत कम है।' इसके बाद वे सभी कुछ देर के लिए चुप बठे रहे।

किस्सा एक तोप का

आधे दाम म हाथी की खरीद भी बुरी नही समझी जाती और वह तो तोप थी। आलीशान तोप। आधे स भी कम दाम म खरीदी गयी। पसन्द मेरी नही, पत्नी की थी। मैंने तो विरोध किया था। 'देवी ! तोप के बदले कोई छोटा शस्त्र खरीद लो तो उचित रहेगा।' पत्नी न तीक्ष्ण दृष्टि से मेरी ओर देखा। नाजुक परिस्थिति को ध्यान म रख तत्क्षण ही उनका समर्थन कर दिया। 'वैसे तोप बुरी नही है। गाहे ब गाहे काम आएगी।

तोप ठेले पर लदवा दी गई। इतनी बडी तोप कन्धे पर उठा कर तो घर लाई नही जा सकती थी। वैसे पत्नी इस व्यथा से पीडित थी कि ठेले वाले को दो रुपये देने पडेंगे।

रास्ते भर सोचता रहा— भला यह तोप किस काम आएगी ? न तो इससे दुश्मन पर वार किया जा सकता है, न ही शिकार किया जा सकता है और ब मुश्किल दुश्मन पर वार करने का विचार भी कर लिया जाए तब भी बडी मुसीबत—एक घण्टे तक तोप म ठूस ठूस कर बारूद भरो मशाल जलाओ। फिर रेंज मिलाओ। इतने समय म दुश्मन तमाशा भी देख लेगा और भाग भी जाएगा। तोप को लेकर पीछे दौडा नहीं जा सकता ये बातें बहुत आगे की है। मेरे जैसा दिल का कमजोर व्यक्ति तोप के दर्शन मात्र से ही घबरा जाएगा।

तोप को ठेले से उतार कर दरवाजे के सामने रख दिया गया। मोहल्ले के बच्चो की भीड तोप को घेर कर खडी थी। पत्नी बच्चो की इस भीड को हटाने की नाकामयाब कोशिश कर रही थी। नई पीढी हठ पर थी। उसने पीछे हटना नही सीखा। एक तरफ स हटते दूसरी ओर जा खडे होते। यह तमाशा काफी देर तक चला। आखिर पत्नी तंग आ गई। आना ही था। झल्लाती हुई घर मे चली गई। मैं तटस्थ मुद्रा में खडा हुआ यह सब देखता रहा।

ठेले वाले को किराया देकर विदा किया।

अब हमारे सामने समस्या थी कि तोप कहाँ रखी जाए ! पत्नी से पूछा। वह पहले स ही झुंझलाई हुई थी। आदतन एक बार तो मुह से निकल ही गया कि 'मेरे सिर पर रख दो।' अगले ही क्षण परिस्थिति की नजाकत देखते हुए

—आपको तोप के पास खड़ा देख हुए अकबर बादशाह की याद आती है।

—अरे साहब! मोहल्ले में तोप रहेगी तो चोर चकार दूर से ही खिसक जाएँगे।

—लेकिन चोर तोप ही उठा ले गए तब?

—चोर क्या तोप से सिर फोड़ेंगे!

—तब क्या आपने सिर फोड़ने के लिए तोप खरीदी है?

—छोड़िए जी! मोहल्ले में [illegible] भी [illegible] तो गई।

—क्यों जी! इस तोप का इतिहास क्या है?

—इतिहास पूछ रहे हो इसका! [illegible] तोप में साथ क्या [illegible] आता है?

—बहुत मुसीबत होगी जब आप इसे घुमाने ले जाएँगे।

—अरे भाई, यह तोप है तोप! कोई कुत्ता नहीं जो इसे घुमाने ले जाया जाए।

—अब एक बात तो खुशी की होगी।

—क्या?

[illegible]

—कैसे ?

—अरे, तोप जो है इनके पास । बास के बगले तक तोप घसीट कर ल जाएँगे और ललकार कर कहेंगे—'करता है या नही प्रमोशन—तोप स उडा दूगा साले को ।

—एक बात और—अब आप तोप की दुहाई देकर कई काम हाथो हाथ निकलवा लेंगे ।

—जैसे—राशन लाना होगा तब राशन वाले स कहेंगे, 'साले ! पहले राशन मुझे दे—जानता नही, मरे पास तोप है।

—कैसी बच्चा वाली बात कर रहे हो—तोप क्या इन छोटे मोटे कामा के लिए ही है।

—तब क्या बडे कामो के लिए है ?

—और नही तो क्या ! जब देश पर सकट

—छोडिये इन बातो को तोप का इस्तेमाल तो इनसे ज्यादा इनकी पत्नी करेगी ।

—अरे साब ! वो तो पहले से ही क्या तोप स कम है ?

पत्नी का गुस्सा सातवें आसमान स भी ऊपर चला गया। मेरा गुस्सा भी बढता जा रहा था । पत्नी गरजी । मैं चौंका। सोचा पडी पडी तोप कैसे छूट गई। लोग हँस रह थे। हँसी के पत्थर हम छलनी बनाए दे रहे थ। इच्छा हुई तोप के सामने जा खडा होऊँ और सबसे पहले स्वय को ही स्वाहा कर लू।

पत्नी ने फसला सुनाया— इस मुई तोप को अभी के अभी मेरी नजरो के सामने से हटाओ।

मैं भी यही चाह रहा था न मालूम किस कुघडी म तोप खरीदी थी।

कुछ ही मिनटो म तोप को पुन ठले पर लादा जा रहा था बच्चो की भीड ज्या की त्यो खडी थी। मैं एक बहुत बडी आफत को ठेले पर लदते हुए दख रहा था।

मूल्यवृद्धि पर शोक सभा

एक जनतन्त्रीय प्रदेश का मन्त्रिमण्डल अपनी आवश्यक बैठक मे गमगीन बैठा हुआ था। गमगीन होने का कारण था मूल्यवृद्धि। प्रधानमन्त्री ने मूल्यवृद्धि का प्रश्न मन्त्रिमण्डल के सदस्यो के बीच उछाल दिया था। सदस्यो ने लपक कर उस प्रश्न को सभाल लिया और अब खामोश बैठे हुए मूल्यवृद्धि पर शोक मना रहे थे।

खामोशी प्रधानमन्त्री ने ही तोडी। कहने लगे 'मेरे खयाल से तो मूल्यवृद्धि उतनी है नही, जितना विरोधी दल शोर मचा रहे हैं।'

मन्त्रिमण्डल के सदस्यो को लगा, वे व्यर्थ ही अब तक शोक मना रहे थे। उन्हे अपने व्यर्थ के शोक के लिए अफसोस होने लगा। प्रधानमन्त्री के ठीक सामने बैठे एक चपटे मुह के मन्त्री के आठ खुले विरोधी दल तो नित्य ही तिल का ताड बनाता रहता है। उसकी हम चिन्ता क्यो करें ?

"आप ठीक कहते है।"—प्रधानमन्त्री ने तत्काल उत्तर दिया "मगर हम उनकी बातो को टाल भी तो नही सकते। उनका प्रभाव जनमत पर पडता है। अगले ही वर्ष चुनाव है। हमे चुनावो के लिए जनमत का तो ध्यान रखना ही होगा।"

चुनाव की बात को सुनकर मन्त्रिमण्डल फिर गमगीन हो गया। चुनाव की भला कैसे उपेक्षा की जा सकती थी ?

मन्त्रियो के शोक को और अधिक बढाते हुए प्रधानमन्त्री बोले—"हमे इस समस्या का कोई हल ढूढना ही होगा।"

प्रधानमन्त्री के सामने थोडा हट कर बैठे एक गोल मुह के मन्त्री ने सुझाव दिया 'हम हर स्कूल, कॉलेज गली, बाजार, मोहल्ले व हर गाव म यह प्रचार करवा दें कि देश मे कोई महँगाई नही है। यह तो केवल विरोधी दलो का प्रचार है।"

इस बात को सुनकर सभी मन्त्रियो के चेहरे चमक उठे। उन्हे लगा समस्या का बहुत सरल समाधान उन्हे मिल गया। मगर प्रधानमन्त्री पूर्ववत गम्भीर बने रहे। वे बोले "इस कार्य से कोई लाभ होने वाला नही। हमारे साथियो

विभाग ने वस्तुओ के मूल्यो के जो आंकडे प्रकाशित किए हैं, उनस भी मूल्यवृद्धि सिद्ध होती है।'

इस बात पर मन्त्रियो के चेहरे फिर बुझ गए। सांख्यिकी विभाग के प्रति उनके हृदय म घृणा के भाव उत्पन्न हुए। इच्छा हुई कि सांख्यिकी विभाग म फैली लालफीताशाही की जमकर आलोचना कर दी जाए और उसके प्रमुख अधिकारियो का स्थानान्तरण कर दिया जाए। मगर साहस नही हुआ, सांख्यिकी विभाग इन दिनो खुद प्रधानमन्त्री संभाले हुए थे।

प्रधानमन्त्री के करीब बैठे एक अधगजे मन्त्री ने तनिक झुककर नम्रता से पूछा "इन आंकडो के अनुसार कितनी मूल्य वृद्धि हुई है ?"

'मूल आंकडो के अनुसार तो मूल्य वृद्धि साठ प्रतिशत पाई गई थी लेकिन उसमे मैंने कुछ संशोधन करवा दिए। जो आंकडे प्रकाशित किए गए, उनके अनुसार अब यह वृद्धि केवल 40 प्रतिशत है।"

"चालीस प्रतिशत भी कोई वृद्धि है ? इतना मामूली हेरफेर तो मूल्यो म होता ही रहता है।'—अधगजे मन्त्री ने कहा।

चपटे मुह वाले मन्त्री ने बात को और आगे बढाते हुए कहा— मुझे तो लगता है बाजार म वास्तव मे कोई मूल्य वृद्धि है ही नही। मुझसे घर पर कभी किसी ने यह चर्चा नही की। न किसी मित्र या रिश्तेदार ने ही मूल्यवृद्धि की कभी कोई शिकायत की।"

इस पर प्रधानमन्त्री न तीखी नजरो से चपटे मुह वाले की ओर देखा। वह सिटपिटा गया। प्रधानमन्त्री ने पूछा— तुम कहना क्या चाहते हो ?'

चपटे मुह वाले ने अपनी बात का स्पष्टीकरण देते हुए दबे स्वर म कहा— मेरा मतलब है कही हमारे हिसाब किताब म ही तो कोई गडबड नही है ?

तुम्हारा मतलब है कि मैंने अपने विभाग की ठीक तरह देखभाल नही की ?' प्रधानमन्त्री ने चपटे मुह वाले को घूरते हुए कहा।

इस पर चपटे मुह वाला हडबडा गया। उसे लगा कि उसका मन्त्री पद अब कुछ ही समय का मेहमान है। वह लगभग रोते हुए लहजे म बोला 'नही नही। मेरा मतलब यह नही था। मैं क्षमा चाहता हूँ। मुझे माफ कर दीजिए।

अधगजा मन्त्री भी चपटे मुह वाले को घूर रहा था। वह चाहता था कि प्रधानमन्त्री सचमुच ही चपटे मुह वाले को मन्त्रिमण्डल स निकाल दें ताकि उसके स्थान पर वह अपने छोटे भाई को मन्त्रिमण्डल मे लेने के लिए जोडतोड बैठा सके। लेकिन प्रधानमन्त्री ने माफ करने वाले अंदाज म चपटे मुह वाले की ओर देखते हुए अन्य मन्त्रियो की ओर दृष्टि घुमा ली।

'मूल्यवृद्धि का सबसे अधिक असर गरीबो पर पडता है। हम अपनी दृष्टि से नही गरीबो की दृष्टि स मूल्यवृद्धि को देखना है। हमारा सबसे बडा

वक्तव्य गरीबो की सहायता करना होना चाहिए।"

प्रधानमन्त्री की इस बात पर कोने म बैठे हुए पिचकी नाक वाले मन्त्री ने आशका व्यक्त की—"इससे कही पूजीपति और उद्योगपति नाराज न हो जायें। चुनाव के लिए अभी हमने पूरा चन्दा भी वसूल नही किया है।"

"पूजीपतियो और उद्योगपतियो की नाराजगी का प्रश्न ही नही उठता"—प्रधानमन्त्री ने समझाते हुए कहा—"उनके लिए लाइसेंस और परमिट आदि की वतमान व्यवस्था कायम रहेगी। मगर उनके साथ हमे गरीबो का भी ध्यान रखना होगा। आखिर आप लोग क्यों भूल जाते है कि धन के लिए हमे पूजीपतियो की आवश्यकता है तो वोट के लिए गरीबो की। गरीबो के ही वोट समाज मे सबसे ज्यादा होते हैं। फिर उनकी उपेक्षा कैसे की जा सकती है?"

पिचकी नाक वाले की समझ मे बात आ गई।

इसके बाद थोडी देर तक सभी सदस्य मूल्यवद्धि के लिए फिर से मौन रहकर शोक मनाने लगे।

थोडी देर बाद प्रधानमन्त्री ने सभी मन्त्रियों पर सरसरी नजर डालते हुए पूछा—'इस समस्या का क्या कोई हल आपको नजर आया?"

सभी मन्त्री प्रधानमन्त्री की ओर देखने लगे। जैसे हल उन्ही के चेहरे पर कही चिपका हुआ हो।

कुछ मन्त्रियो के दिमाग मे एकाध हल उभरे भी। मगर वे खामोश रहे। उन्हे आशका हुई कि प्रधानमन्त्री उस हल के कारण कही उनसे नाराज न हो जायें। उन्हे हल की बजाय अपना पद अधिक प्रिय था।

प्रधानमन्त्री श्रद्धा से लबालब भरे अपने मन्त्रियो की आखो को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। निणय देने वाले लहजे मे उन्होने अपनी राय व्यक्त की—'हमारे सामने मूल्यवृद्धि के पीछे दो समस्यायें है। पहली समस्या है पूजीपतियो को खुश करने की और दूसरी समस्या है गरीबो को खुश करने की। जाहिर है कि दोनो को एक साथ खुश रखना आसान नही। पूजीपतियो पर नियन्त्रण लगाने से मूल्यवद्धि तो रुक जाती है और गरीबो को खुश भी किया जा सकता है मगर उससे पूजीपति नाराज हो जायेंगे। दूसरी ओर, यदि हम मूल्यवद्धि को रोकने के लिए कुछ भी न करें तो उससे पूजीपति अवश्य खुश रहेंगे मगर गरीब नाराज हो जाएँगे। ऐसी स्थिति म अच्छा यही है कि हम मूल्यवृद्धि की जाँच पडताल करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति कर दें। उससे पूजीपतियो को कोई हानि नही होगी और गरीब भी यह सोचकर सतुष्ट रहेंगे कि हम मूल्यवद्धि रोकने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं।"

इस पर मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्य वाह वाह कर उठे। कितने सुन्दर और तर्कसगत विचार है? सभी सदस्य इन विचारो की प्रशसा करते हुए प्रधानमन्त्री

पर अधिक से अधिक मक्खन उडेलने की कोशिश कर रह थे ।

प्रधानमन्त्री अपने मंत्रियों से बहुत खुश हुए। कुछ समय पूर्व उनका विचार मन्त्रिमण्डल मे परिवर्तन करने का था। मगर अब मंत्रियों की यह भक्तिभावना देखकर उन्होंने अपना यह विचार रद्द कर दिया।

कुछ देर खामोश रहकर प्रधानमन्त्री फिर बोले "वैसे तो उम्मीद है कि जब तक हमारा यह आयोग जाच पडताल करेगा तब तक मूल्यवृद्धि अपने आप रुक जाएगी। आखिर मूल्यवृद्धि की भी तो कोई सीमा होगी। लेकिन अगर तब तक मूल्यवृद्धि नही रुकी तो हमे इस विषय पर और आगे सोचना पडेगा क्योकि तब तक चुनाव भी काफी निकट आ जाएँगे।

सभी मन्त्री उत्सुकता से प्रधानमन्त्री की ओर देखने लगे। अभी कुछ समय पूर्व एक आयोग की स्थापना से जो प्रसन्नता उत्पन्न हुई थी, वह अब चुनाव चिन्ता मे डूब गई।

मन्त्रियो की उत्सुकता और चिन्ता देखकर प्रधानमन्त्री स्नेह से मुस्कराये। बोले —"चिन्ता न करें, चुनावो तक मूल्यवृद्धि नही रुकेगी तो हम एकाध महत्व-पूर्ण वस्तुओ का राष्ट्रीयकरण कर देंगे। इससे जनता तत्काल हमारे साथ हो जायेगी।"

इस पर अधगजे ने झिझकते हुए शका व्यक्त की—'मगर इससे तो पूजीपति हमारे विरोध मे हो जायेंगे।"

प्रधानमन्त्री हँस पडे। बोले—'चिन्ता न करो। हम पूर्ण रूप से राष्ट्रीयकरण नही करेंगे। उन वस्तुओ का थोडा उत्पादन पूजीपति भी कर सकेंगे। राष्ट्रीयकरण के बाद स्वभावत वस्तुएँ बाजार मे पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध नही होगी। इससे पूजीपति अपने भाग के उत्पादन को ऊँची कीमत मे बेचकर पूरा फायदा उठा सकेंगे। इसके अलावा राष्ट्रीयकरण मे भी पूजीपतियो को विशेष लाइसेंस आदि देकर आसानी से खुश रखा जा सकता है। फिर एक बात और भी। राष्ट्रीयकरण की घोषणा से पहले ही हम पूजीपतियो से अपना चुनाव चदा ले चुकेंगे। इसलिए तब उनकी नाराजगी की अधिक चिन्ता भी नही रहेगी। आप लोग यह ध्यान रखें कि यह योजना हम लोगो से बाहर न जाए।'

सभी मन्त्रियो ने प्रधानमन्त्री के आगे सर झुका दिये।

बैठक स्थगित हो गयी।

आकस्मिक अवकाश

आकस्मिक अवकाश भी क्या चीज है ! सरकारी कार्यालय या यू कहिए कि सरकारी कमचारी और आकस्मिक अवकाश का जैसे चोली दामन का साथ है। इसके विस्तत विवेचन के लिए हमे दोनो शब्दो पर अधिक प्रकाश डालना होगा।

'आकस्मिक' यानी वह घटना जो अकस्मात घटे—मसलन सौ बार टालने पर भी पत्नी जिद करे कि आज शाम तो आप परिवार को पिक्चर दिखा ही दें। साढे तीन रुपये प्रति व्यक्ति की दर से परिवार की पूरी हाकी इलेवन पर होने वाले व्यय के अनुमान मात्र से आपको झुरझुरी छूट जाती है और तब आपको अकस्मात यह ध्यान आता है कि आज तो आफिस मे ढेर सारा काम है और आपको काफी देर तक रुकना होगा। या यह कि ऑफिस मे कोई चैरिटी शो के टिकट खरीदने के लिए साधिकार आग्रह करता है और अकस्मात ही आपको यह ध्यान आता है कि आज तो आपको चाचाजी को देखन अस्पताल जाना है। अकस्मात घटने वाली ऐसी घटनाओ की सूची लम्बी है, मगर मैं यह मानता हूँ कि विज्ञ पाठको को इन्ही से आकस्मिक शब्द का अथ समझ मे आ गया होगा।

केवल अवकाश ही एक ऐसी स्थिति है जिसम व्यक्ति आफिस के रोजमर्रा के आराम से बोर हाकर एकाध दिन किसी ऐडवेंचर म गुजारना चाहता है। यह क्या कि रोज रोज वही ग्यारह बजे दफ्तर पहुँचे, बडे बाबू से दीन-दुनिया के बारे मे गपशप की, गभीरतापूवक इस बारे म विचार किया कि अमरीका को वियतनाम के बाद अब कहाँ नया पतरा लडाना चाहिए या अगले आम चुनाव के लिए अमुक पार्टी की क्या नीति हो, आदि। चाय का एक दौर कहकहा के साथ पूरा किया। फाइलो के अथाह ढेर म से एकाध फाइल छाँटी, जिस पर कुछ ऐक्शन लिया जाए। फिर, लच के लिए चल दिये। डेढ़ घटे बाद वापस आये, उक्त फाइल पर अडगा लगान वाले स्टाइल म छोटी-सी टिप्पणी लिखी। साथी बाबू के साथ विश्वनाथ की चलनेबाजी की सभावनाओ पर विचारों का आदान प्रदान किया। पान और चाय के एक दौर मे हिस्सा लिया। खर्राटे भरे और

वापस घर चल दिये।

रोज की इस एकरसता स ऊब जाना लाजिमी है। ऐसी ऊबवाली जिंदगी मे एक खुशगवार सुबह आदमी यह सोचे कि चलो आज का दिन कुछ 'थ्रिलिंग' से मनाया जाए जैसे क्यो न राशन की दुकान से शकर और किरॉसीन लाने की कसरत कर ली जाए या क्या न बुखार सिरदद के नाम पर दिन भर घर पर रहकर पत्नी से वाक युद्ध मे सलग्न हुआ जाए ?

अब हमारे लिए आकस्मिक अवकाश नामक इस प्रक्रिया के उपयोग पर कुछ प्रकाश डाल लेना उचित होगा। यह अजीब जरूर लगेगा, मगर जानकारी द्वारा इसे सत्य पाया गया है कि इसका उपयोग सुविधा के रूप मे कम, हथियार के रूप मे अधिक किया जाता है। बाबू सीट पर से कुछ समय गायब रहा और अधिकारी जरा अनुशासनप्रिय हुआ तो सम्मन जारी कर दिया उसके नाम और हाजिर होत ही जारी कर दिया यह फरमान कि 'मिस्टर लगता है आप कार्यालय और घर मे भेद करना भूल गये हैं। आप फौरन आज का आकस्मिक अवकाश प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कीजिए और चलते फिरते नजर आइए।

दूसरी ओर, बाब को अफसर न कुछ काम दिया, उसकी प्रगति के बारे मे जवाब तलब करते वक्त उसे सतोष नही हुआ और यदि उसने डाँटने डपटने का उपक्रम किया तो तेज बाबू फौरन बोला, "श्रीमानजी, यह तो आपका लिहाज करके और यह सोचकर कि यह काम कितना महत्वपूण है, मैं कार्यालय चला आया था, वरना मैं तो आज आकस्मिक अवकाश पर रहन वाला था। खर यह लीजिए मेरे आज के आकस्मिक अवकाश का प्राथना पत्र और इजाजत दीजिए। कल सवेरे आपसे फिर भेंट होगी।"

ऐसा नही है कि हथियार के रूप मे इसके प्रयोग की परम्परा सिफ कार्यालय परिसर तक ही लागू हो। काफी वक्त इसे घर की चहारदीवारी म प्रयुक्त होते भी पाया गया है। बिना किसी बात पत्नी के तेवर चढते दिखायी दिये तो पति महाशय ने निशाना साधकर हथियार चलाया—' होश मे रहो और सभल जाओ वरना मैं कल स ही आकस्मिक अवकाश लेकर कार्यालय जाना बद कर दूगा। पडोसियो से दुनिया भर की गपशप का सिलसिला ब द होत ही अक्ल ठिकाने आ जाएगी। फौरन वह घुटने टेक देती है और बात बन जाती है।

कभी कभी पत्नी इसे पति के विरुद्ध काम मे ले लेती है। घर पर शाम को मेहमान आने वाले हैं और पति महोदय दिन भर के काम के भय स समय पर दफ्तर जाने के लिए जल्दी जल्दी तयार हो रहे हैं। ठीक 'काउट डाउन' के अवसर पर पत्नी की घोषणा सुनायी पडती है—"अजी मैंने कहा आज घर के काम से बचने के लिए दफ्तर की शरण लेना सभव नहीं है। सीधी तरह से आकस्मिक अवकाश का प्राथना पत्र भिजवाइए और मेरे साथ काम में जुट जाइए।'

खैर, गनीमत यह है कि हथियारों की बेतहाशा दौड़ में व्यस्त देशों को इस हथियार का खयाल नहीं आया वरना पेट्रोल के बाद इसी का नम्बर आ जाता।

हमारा देश एक शांतप्रिय देश है। तदनुसार देश में हथियारों के आम इस्तेमाल पर पाबंदी लगी हुई है (बेलन जैसे कुछ घरेलू हथियारों को अपवाद स्वरूप छोड़ दिया गया है।) इसी से प्रेरित होकर एक अनुशासनप्रिय अफसर द्वारा आकस्मिक अवकाश रूपी हथियार पर भी नियन्त्रण लगाने की बात सोची गयी। तत्काल यह आदेश जारी किया गया कि आकस्मिक अवकाश कोई जन्मसिद्ध अधिकार नहीं है। इसका प्रयोग अधिकारी की अग्रिम स्वीकृति के बिना नहीं किया जा सकता। नतीजा यह हुआ कि कार्यालय में कुछ दिलचस्प किस्म के प्रार्थना-पत्र आने लगे, जैसे—

"महोदयजी,

सेवा में नम्र निवेदन है कि प्रार्थी को ऐसी आशंका प्रतीत होती है कि अगले मंगलवार को उसके सिर में दर्द होने की संभावना है। अतः आपसे अनुरोध है कि उक्त दिन के लिए अवकाश प्रदान करें।

सधन्यवाद,

आपका आज्ञाकारी आदि, आदि"

अधिकारी ने गुस्से में घंटी बजायी और फौरन प्रार्थी को तलब किया।

"इस प्रार्थना पत्र का क्या मतलब ?"

"श्रीमन् बात ऐसी है कि सिर में दर्द न हुआ तब तो कोई बात नहीं, ऑफिस आ जाऊंगा और इस प्रार्थना पत्र को रद्द करवा लूंगा। मगर, मान लीजिए कि सिर दर्द हो ही गया तो यह स्वीकृत किया हुआ प्रार्थना पत्र कितना काम आयेगा। मैं तो सावधानी बरत रहा हूँ ताकि कानून भी न टूटे और आवश्यकता पड़ने पर मुझे परेशानी भी न हो।"

"गेट आउट," अफसर दहाड़ा।

एक अन्य स्थिति में अधिकारी के पास इस किस्म का प्रार्थना पत्र प्रस्तुत हुआ—

"मान्यवर,

अभिनन्दन सहित निवेदन है कि कार्यवश अधोहस्ताक्षरकर्ता 7 और 8 तारीख को कार्यालय में उपस्थित न हो सकेगा। कृपया उसे 'फरलो' पर रहने की स्वीकृति प्रदान करें।

भवदीय,

फलां फलां"

अधिकारी "'फरलो' का क्या मतलब ?"

कमचारी (भोलेपन से) मतलब साफ है, यानी ऑफिशियली तो मैं ड्यूटी पर रहूँगा मगर वास्तव म छुट्टी मना रहा हूँगा।

अधिकारी यू शट अप।

कमचारी थक्यू सर।

आये दिन होने वाली इस प्रकार की स्थितियो से परेशान होकर अफसर ने अपने आदेश को ढीला छोड दिया और कार्यालय म इस हथियार का फिर स स्वछन्द प्रयोग किया जाने लगा।

जिज्ञासा होती है—क्या इस हथियार पर नियन्त्रण लगाना सभव नही है। आखिर हर हथियार की काट बन गयी। तलवार के लिए कवच, भोले के लिए ढाल, यहा तक कि मिसाइल से लिए ऐंटीमिसाइल बन गयी तो फिर सिफ इस आकस्मिक अवकाश नामक हथियार की ही कोई काट क्यो न बनी? यदि कोई बनाये तो अवश्य नोबल प्राइज पाये।

सर्वहारा शून्य

मेरे एक दोस्त को दिक हो गई है। 'दिक' शब्द 'तपेदिक' की झडन है। वैसे यह रोग कभी राजरोग कहलाता था। जब से सरकार ने राजाओं को आम नागरिक की लाइन मे खडा कर दिया और उनको कबूतर उडाने से लेकर होटल चलाने का काम करना पडा, इस राजरोग का भी अवमूल्यन हो गया। तपेदिक यानी यक्ष्मा, यानी टी० बी०, राजरोग के बजाय 'जनरोग' हो गया। यह इस तरह मामूली लोगो का मामूली रोग हो गया जैसे कभी का मन्त्री चुनाव मे हारने के बाद सडक छाप आदमी हो जाता है। उसके आदमी हो जाने के मतलब यह कभी नही लिया जाना चाहिये कि जब वह मन्त्री था तब आदमी नही था। मान लिया जाये कि तब वह आदमी नही था। तब वह क्या हो सकता था? आप सोचिये क्या हो सकता था? रिक्त स्थान मे 'पूर्ति' आपके अनुभव और अक्ल का सबूत देगी।

यह विषयांतर हो गया जो हर बुद्धिवादी की विशेषता होती है। क्योंकि बार बार विषय से बिदकना, बछडे की तरह उछाल मारना, दरार खाये व्यक्तित्व (स्प्लिट-पर्सनेलिटी) का लक्षण होता है। और वह बुद्धिजीवी क्या जो स्प्लिट पर्सोनेलिटी न हो।

किसी उम्र मे—यानी जवान उम्र मे—मेरा यह दोस्त अच्छा खासा मलग था। दो दो सौ दण्ड पेलता था। अखाडे मे दाव पेंच सीखता था। वह जानता था कि हिन्दुस्तानी पहलवानी दाव पेच की कला पर निर्भर करती है, जबकि विदेशी पहलवानी कोरी जानवरी ताकत से चलती है। मानना पडेगा कि कम विकसित देशो मे खेल से लेकर आध्यात्मिकता तक मे कला का वर्चस्व मिलेगा — बारीक और सूक्ष्म कला से, शून्य तक की यात्रा करती हुई कला। शायद इसलिए कि कला और गरीबी का शाश्वत गठजोड है। अल्प विकसित देशो मे गरीबी इस तरह उगती फलती आई है जैसे बरसाती दिनो मे घूरे पर घास और कुकरमुत्ता का वंश।

मेरा दोस्त इसलिए अखाडेबाजी नही करता था कि उसे भारत श्री बनना था या विश्व चैम्पियन का खिताब जीतना था, बल्कि उसके दिमाग मे पुरानी

रटी हुई कहावत कही अडी हुई थी कि तन्दुरुस्त जिस्म मे स्वस्थ्य दिमाग रहता है और कि वही राष्ट्र प्रसिद्ध और विश्व प्रसिद्ध साहित्यकार बन सकता है जा शरीर से गबरू हो।

यानी मेरे दोस्त के दिमाग मे उसकी अपनी एक आदश छवि थी (उसे विश्व प्रसिद्ध साहित्यकार होना है। एक दिन अवश्य नोबेल पुरस्कार प्राप्त करना है)। जिस वह पूरी योग साधना व साहित्य साधना के जरिये किसी दिन पाना चाहता था।

उसने बडे बडे साहित्यकारो की सफलता के रहस्य को पहिचानने की इस तरह कोशिश की थी जैसे सी० बी० आई० या केद्रीय जासूसी सगठन का कोई दक्ष और दीक्षित सदस्य किसी पेचीदे मामले के रहस्य का पता लगाता है। पहले तो उसे यह लगा कि बडे साहित्यकार बनने के लिए भारतीय दशन और सस्कृत साहित्य को पढना जरूरी है क्योकि दशन के बने बनाये साचे मे कविता ढाली जा सकती है, सस्कृत साहित्य अपने मे इतना समृद्ध और सौंदयपूत है कि उप मायें और कल्पनाएँ वहा से कितनी भी सख्या और मात्रा मे उडा ली जायें भडार खत्म ही नही हो सकता। इस कच्ची सफाई साहित्यिक सिद्धहस्तता म एक सुख यह भी था कि अग्रेजी सत्ता की कृपा से पढे लिखे बुद्धिजीवी सस्कृत भाषा के मामले मे ठोठ थे (बाकी जो बहुत बडी जनसख्या थी वह तो निपट निरक्षरवादी सम्प्रदाय की थी ही)।

मेरे दोस्त न अपना प्रारम्भिक साहित्य इसी साहित्यिक कारगुजारी से शुरू किया। यह हिन्दी साहित्य भी अजीब कलाबाज है! जब तक मेरा दोस्त उस आध्यात्मिक स्तर या तह तक पहुचता कि कालजयी रचना लिखता, साहित्य लुढक्न लोट की तरह लुढकने लगा—साहित्य म खयाम की दारू और उसकी नाजनीन साकी न असर दिखाया तो रूस के लाल भडे साहित्य म चिपकने लगे और इलियट और अस्तित्ववादियो के चेले चाटे पदा होने लगे!

वनस्पति विज्ञान म वनस्पति पैदा होने का एक कारण है—फल जब काफी सूख जाता है और उसका सारा हरापन गायब हो जाता है तब वह फटता है। तब उसके मुलायम रोयें धारी बीज हवा मे उडत हुए सत योजनी समुद्र को भी पार कर जाते हैं और धरती पर छितर जात हैं। जहाँ उपजाऊ जमीन मिलती है वहाँ पौधे की शक्ल म उग आते हैं।

मेरे दोस्त ने साहित्य विज्ञान तो पढा था लेकिन वनस्पति विज्ञान नही पढ़ा था। वह यह तो नही समझ सका कि यह मामला क्या हुआ कि विदेशी माल की तरह साहित्यकारो के दिमाग पर विदशी साहित्य कस उगन लगा (जबकि किसी भी साहित्यकार की खोपडी खलवार नही थी) पर वह यह भी नहीं समझ सका कि स्वदेशी-साहित्यिक लघु उद्योगी कला पर ऐस कौन सा

जजिया या टैक्स लगे कि सारे के सारे साहित्यकारों को मालवाही, हम्माल बनना पड़ा।

समस्या मेरे दोस्त के सामने 'क्यों और कैसे हुआ' की नहीं थी (वह तो साहित्यकार बनने का ख्वाब देख रहा था—यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर या साहित्यिक डाक्टर बनने का थोड़े ही!) उसके सामने मुश्किल यह थी कि अब वह 'किसकी बाँह गहे'?

साहित्य में एक दूसरी तरह की धमचक मची हुई थी। साहित्यकारों की फस्ट एलेविन, सैकेंड एलेविन थर्ड एलेविन की टीमें हाकी फुटबाल खेलती थी, और उनके प्रशंसक दर्शक आलोचक, चियर अप, बकअप, करते थे।

मेरे दोस्त ने मुझे बताया, उस वक्त मेरी हालत ऐसी हो गई जैसे शाम के धुंधलके में कोई हिरन, इसलिए चौंधिया गया हो कि उसके तीन तरफ, जीप, कार, ट्रक हो, और तीनों की रोशनी सीधी उसकी आँखों पर पड़ रही हो।

मेरे दोस्त ने दार्शनिक चेहरा बनाते हुए कहा था—अस्तित्व का संकट आदमी दो तरह से महसूस कर सकता है—एक तो तब जब उसकी अपनी रची आदर्श छवि खतरा महसूस करती है। यह वह क्षण होता है जब उसकी आध्यात्मिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना मूल्य चेतना, यहाँ तक कि विकल्पवरण चेतना सुन्नता की स्थिति प्राप्त करने लगती है जैसे उसे एनेस्थीसिया दिया गया हो। चेतना अपने अंशी-अंश रूप अस्मिता को खोने खोने की दशा में आ जाती है।

मैंने इस अस्तित्व संकट को उस समय महसूस किया तथा बौखला कर तीनों तरह की टीमों में बारी बारी से खेला था। लेकिन प्रशंसक दर्शक आलोचकों की बेईमानी देखो मुझे और मेरी साहित्यिक कलाकारिता को प्रशंसा पत्र तक नहीं दिया गया। प्रशंसा पत्र तो क्या धैर्य धारण पुरस्कार (कन्सोलेशन प्राइज) तक नहीं घोषित किया।

बेशक मेरी सर्जनात्मक अस्मिता ने अस्तित्व का संकट उसी तरह झेला जिस तरह द्वितीय विश्वयुद्ध दौरान पश्चिम की सामूहिक चेतना ने भुगता था, लेकिन मैं उस संकट को झेलता हुआ अपनी गुमशुदा चेतना की तलाश करता रहा। आखिर मेरी चेतना भारतीय नस्ल की चेतना थी, चाहे कितने लम्बे काल की पराधीनता को भोगने के लिये बाध्य रही, कितने ही मायावी मारीच उसे लिरियाने के लिये आए, वह जोनियाँ और जन्म के चक्र को पार करती हुई भी अछीजी रही। मुझे इस अनुभव से गुजरते हुए कई लौकिक व पार्थिव सत्य हाथ लगे थे लेकिन मेरा प्रांजल अहंकार और शुद्ध स्वाभिमान उन तुच्छ सत्यों को स्वीकार नहीं कर सका।

साहित्य संघर्ष का सबसे बड़ा सत्य यह था कि मुझे किसी प्रभावशाली दादा साहित्यकार के चरणागत जाना चाहिये था, उसकी चरण रज का तिलक

लगाकर उसके नाम की हजारी माला जपनी थी, मैंने वह नहीं किया।

उसके दरबारी आलोचको के मसका मसाज करनी थी लेकिन मैंन इस तरह का कोई प्रशिक्षण प्राप्त नही किया था, न मैं पैदाइशी नाई था।

मुझे अपनी रचनाआ को दल-नेताओ का समर्पित करना था—चाह वह मिनी कविता होती या महाकाव्य, चाहे चुटकुला या महत उपन्यास।

मुझे सम्पादक-श्रेष्ठियो को नजराना वजराना देना चाहिये था (उनके मूड और आवश्यकता के अनुसार) वह भी मैंने नही दिया।

मेरे दोस्त ने दप के साथ मुझ से सवाल करते हुए पूछा था—तुम बताओ क्या कोई भी स्वाभिमानी और आत्मविश्वासी साहित्यकार इस तरह से पहिचाना जाना पसन्द करेगा ? मैंने तो लानत भेजी एस तरीको पर, लेकिन साहित्य सृजन से नही हटा। नोबेल पुरस्कार पाने का ख्वाब ऐसे हालात मे भी जिन्दा था और यह भी सोचता था कि कभी न कभी स्वदेशी लखट किया पुरस्कार या अकादमीय पुरस्कार मारूंगा—आखिर तो साहित्य साधना कर रहा था नमक मिच मसाला नही बेच रहा था।

दूसरी तरह के जिस अस्तित्व के सक्ट का जिक्र मरे दोस्त न बताया उसका प्रत्यक्षदर्शी तो मैं खुद रहा।

मेरे दोस्त न आदश के झोक मे एक ऐसी लडकी से शादी कर ली जो किसी वक्त वश्या बाजार की शोभा रही थी। ऐसा भी नही था कि वह प्रेम विवाह था, या किसी मजबूरी मे किया गया विवाह। उसने कसम खाकर यह कहा था कि मेरा यह कतई उद्देश्य नही या कि आलोचक अगर मेरे साहित्य को उसकी आ तरिक श्रेष्ठत के कारण वाजिब कोटि नही देते हैं तो मैं इस आदश विवाह के माध्यम स प्रचार तथा प्रतिष्ठा पाऊँ। यह मेरे सवेदनशील हृदय का दायित्व बोध था।

मेरे दोस्त की पत्नी उस वक्त भी टटकी जूही की कली लगती थी। मेरा अनुमान था उसकी सम्वदना सौंदय के भोग की परिष्कृत अनुभूति के बाद अवश्य उदात्त स्तर का साहित्य रचेगी। निश्चित रूप से वह प्रेम का य का अद्वितीय उदाहरण होगा।

मेरा अनुमान यह भी था कि क्योंकि आधुनिक जि दगी मे प्रेम साहित्य सडक छाप साहित्य म घटिया होकर आ रहा है इसलिये मेरा दोस्त नया मानक अवश्य स्थापित करगा। लेकिन परिणाम विपरीत आया। सजन दूसरा मोड ले गया और दो दशक म पाच बच्चे पदा हो गये। किसी समय की वैश्या बाजार की मेनका गहस्थी म आकर कच्चो बस्ती की रहन वाली किसी प्रौढा सरीकी हो गई। मेरा मलग दोस्त दारू और जोरू की तान्त्रिक साधना करते-करते निपट सवहारा स्थिति मे आ गया—कृषगात, आँखें गड्ढो मे, चेहरे की हड्डियाँ

ऊबड खाबड सडक सी। मैं अगर अपनी याद स कोई परिचित चिह्न सामने रखू जो उसकी शक्ल का साम्य बताये तो वह था कवि मुक्तिबोध का अतिम वक्त का भयानक चेहरा।

फक इतना था कि मुक्तिबोध का वह चेहरा मरने के वक्त का था, जबकि मेरे दोस्त का वसा हुलिया उसके जि दा रहते हुए था। उसे तपेदिक भी हो गई और दूसरी बीमारियो ने भी घर रखा है।

वह कहता है अस्तित्व का यह जिस्मानी सकट बाध है, जिस मैं हर क्षण भुगत रहा हूँ। मेरी आदश छवि अभी भी अछूती है। मेरी नोबेल पुरस्कार की कामना अब भी अखण्ड यौवना है। बस यह शरीर सकटग्रस्त है।

अपने को पहिचानने की कोशिश करता हूँ तो ऐसा लगता है मैं 'वह हूँ ही नही, जो कभी था। तकपूण शृखला मे अपन से सवाल करता हूँ वह नहीं है, तो कौन है ? क्यो है ? वैसा नही ऐसा है, तो कैसे है ?

दोस्त बताता है—सवालो के उत्तर मे मुझ मे एक शू य बोलता है। मैं चीन्हना चाहता हूँ कि यह सवहारा शू य है या शू य का रूपा तरण सवहारा पन मे है।

लेकिन इस हालत तक पहुँचने के बावजूद भी वह अपनी पत्नी को दिलासा देता रहता है कि तुम्हारी अग्नि परीक्षा है सीते, एक दिन तुम्हारा राम अवश्य साहित्य म चक्रवर्ती पद को प्राप्त करेगा। नोबेल पुरस्कार उसके सिर पर मुकुट की तरह सुशोभित होगा। लखट किया पुरस्कार सुदशन चक्र की तरह उँगली पर घूमेगा। चरण के नीचे अकादमी पुरस्कार का शतदल कमल होगा। तुम्हारे मर्यादा पुरुषात्तम की यश पताका विश्व साहित्य पर फहरेगी। तुम्हारे पुत्र-पुत्री पिता के यश से सम्पन्न होकर प्रकाशन सस्थानो के एकाधिकारी अधिपति होगे।

बेचारी सीता स्वप्न सम्मोहिता हो उस दिन को सजयी चक्षु स देखती है जिस दिन उसके राम की कल्पनापुरी साक्षात उसकी रहायिसपुरी होगी।

मेरी समस्या और भी गम्भीर है। मैं आज तक नही समझ पाया कि मेरा दोस्त वास्तव मे मूत है या मेर अन्त का अमूत बिम्ब।

और अगर यह अमूत बिम्ब है तो अवचेतन की अध गुहा से मुक्त हुआ शिशु है या पराचेतना स प्रतिबिम्बित मायावी बटुक अवतार।

सदिग्धता चैतन्य चेतना की रूपा तरित स्थिति हो तो कह नही सकता वरना यह मेरा दोस्त युग तथा काल को पार करता हुआ अब भी कस जीवित है जब कि असाध्य तपेदिक से ग्रस्त है।

अपनी चेतना के सदभ में सदिग्ध होना क्या अस्मिता का गुम हो जाना नही है ?

आश्चय है उत्तर म मुझ म भी एक शू य प्रतिध्वनित हो रहा है। यह सवहारा शू्य है या शू्य का सवहारा रूप।

मेरा दोस्त भी इसी शू य को सुनता था। पता नही वह सुनता था या मैं अपने शू य को सुनता रहा हूँ।

यह शू्य शब्द ब्रह्म है या आत्म भ्रम।

जब मैं ही निश्चित नही कर सकता तो आलोचक क्या तय कर पायेंगे। तब मेरे दोस्त के बार म कसे निश्चित हो सकता है कि वह 'था' या 'है' भी या मरा वहम है।

पोशीदा राज

क्या बतायें ? बात ही ऐसी है। साँप छछूंदर वाली हालत हो रही है लेकिन जब दिल का राज खोलना सोच ही लिया तो कैसी शर्मोहया ?

बात यह है कि जाने किस मनहूस घडी मे हमारी दादी नानी और माँ ने अपनी मेम साहब को 'दूधो नहाओ पूतो फलो'—की दुआ दे दी थी कि उसका नतीजा आज तक हम भुगत रहे हैं। ईश्वर ने कुछ ज्यादा ही मेहरबानी हम पर की है। अजीब न्याय ! वरना क्या हम अपने घर म इकलौते चिराग रह जाते ! हमेशा माँ गण्डे ताबीजो से लैस रहती इस डर से कि एक आख का क्या ? दायाँ बायाँ भरापूरा रहना चाहिये, लेकिन उनकी हम एक आख ही रहे, परन्तु इधर ? हे भगवान !

अब हम अकेले जो रहे, तो लाड प्यार का यह परिणाम निकला कि पढाई मे निहायत कमजोर दिमाग रहे घिसट घिसटाकर इतना ही कर पाये कि आज क्लर्की की चक्की म पिस रहे है उधर पैनी सावधानी से भरी देख रेख मे पलने के कारण शरीर भी पूरा विस्तार नही ले पाया। सूत सुतली से हाथ पाँव सीना इतना तग कि कपडे पहनने को मन न करे—चेहरे की हड्डियाँ ऐसी खोफनाक कि आईना उठाने को मन नही—चार दोस्तो के साथ उठने-बैठने मे शम खाने पीने की क्या कमी ? पर मजाल है कि उन्नीस बीस का फक आ जाये ?

जी हाँ बतात हैं अब कमे भी हा, भीतर दिल तो धडकता ही था न ! इसलिये स्कूली दिनो में ही हम एक खूबसूरत लडकी का चुपचाप पीछा किया करते—उसे देखा नही कि आँखें वही बिछकर रह जाती। एक दिन उस जाने क्या सूझा कि गली के मोड पर रुक कर एक जान लेवा मुस्कान फेंक दी। हम बाग-बाग होकर पास आ गय। मन उछल कर मुह पर जैसे ही उसके पास पहुँचे कि वह इठलाकर बोली, "जनाब ! कभी तीज त्योहार शीशे मे मुह देखा है ? कभी देखें हैं मुँह मे खुदे गड्ढे ! वाह ! यह सूरत और ऐसी आसमानी उडानें ?"—वह तो कहकर रफूचक्कर और इधर काटो तो खून नही। अपमान से काले पड गये। मौत आये, जमीन फटे, हम समा जायें। बैस सही, मानिय,

वही हालत आज भी है बल्कि उससे भी बुरी बदतर यही तो वजह है कि शीशा उठाते ही वह लडकी सामने खयालो म आ जाती है।

घर मे माँ के अलावा मौसी और बूआ भी ह। बूआ स बचपन से ही डरते हैं। बडी रौबीली औरत है। हमारी बूढी मिसरानी कहती है कि इनकी पीठ पर सापिन है तभी तो शादी के चार महीने बाद ही विधवा होकर इस घर मे आ गई। माँ तो लाई इस विचार स कि विधवा की क्या औकात ! दोनो जहानो से बेकार ! दो रोटी इनकी भी सही। ले आइ, लेकिन यह आते ही हो गई दरोगा कोतवाल। मा ठहरी सीधी सरल—बस पूरे घर मे बूआ की तूती एक ये मौसी ! इनका भी यही हाल – कहते हैं जब यह अँगीठी सी दहकती रहती तो पिताजी पचास हाथ दूर रहते– क्या पता, कब आग पकड ले ! अब तो खैर उस मजिल से मीलो आगे निकल गई हैं, लेकिन पिताजी आज भी नजर-पल्ला समेट कर रहते हैं भण्डारे स लेकर बडे सन्दूक अल्मारियो की चाभियाँ इन्ही दोनो के कब्जे म रहती है—इन्ही की हुकूमत। रहती मुसीबत हमारी माँ का मिलता प्यार लाड और इन दोनो की आखें हम खाती रहती। शैतानी पजो की तरह पीछा करती। इसीलिये न कभी गुल्ली डण्डा खले, न कभी पतगो के पेंच लडाये—न कभी छत मुडेरा स दूसरो के आगन पर्दे छाने। वो तो ईश्वर की मर्जी से सुन्दरता कोसो दूर रही, वरना य दोनो हम कनातो म कसकर रखती। तो इस नजरबन्दी के कारण भी हम झुलस कर रह गय। मरियल और चिडचिडे। जवानी के क्या आलम होते हैं कस तूफान उठते है हम नही जान सके— हाँ, अगर हिम्मत करके सीमा स बाहर होकर कोई हरकत करने की चेष्टा भूले भटके की भी तो इन दोनो के सामने बैठकर घण्टो अच्छे चाल चलन पर बडी उबाऊ सीखें सुनी कान पकडे और कसम खाई फिर क्या रहता खाक ? कभी वार त्योहार या और किन्ही उत्सव समारोहो पर इष्ट मित्रो, नाते रिश्तेदारो के यहा जाना जरूरी हो जाता हमारा, तो य दोनो दो चार निठल्ले लडको को हमारे पीछे लगा देती, कि कही हम इस उसकी नजरो म उलझ बिखर न जायें ? किसी मह्दी हथेली को पकड न लें ? इस खुफियाचोर हरकतो के कारण कभी भी चोरी छुपे भी किसी खुशबू भरे साये का सामना नही हो सका। बस शुरू से अपने ही शरीर की गुनगुनी हरारत महसूस करते रहे। औरत की परिभाषा, उसका स्वभाव और उसका साथ एक सपना रहा—यही सपना हमारी बरबादी का कारण बना रहा।

अब सुनिये असली कहानी यहा से प्रारम्भ है। बकौल इन दोनो के हम अब विवाह के काबिल हो गये थे। तेईसवा पार कर चौबीसवें पर आये कि शादी का हगामा शुरू। हम क्यो झूठ बोलें मन की सबसे बडी साध ही यही रही कि अपने घर की दीवारो म ही सही किसी का दशन तो हो, बस हमारे सिर हिलाने

की देर थी कि चुनाव हो गया। बड़ी धूमधाम से इकलौते बेटे की बहू आई। आई क्या, पूरे घर की नजर उसी पर लग गई। इतनी महंगाई में भी सुबह शाम उन्हें पिस्ते बादामों का हलुआ, दूध दही मलाई दी जाती—कहीं बहू यह न समझे कि किस कीचड़ घर में आ गई। इस रख रखाव का नतीजा हुआ कि फूल कर गुब्बारा हो गई। नैन नक्श और तीखे—चेहरे पर चमक—कभी चोटी, काजल बिंदी से दुरुस्त रहने लगी। तरह तरह की रंगीन साड़ियाँ और लाली-पाउडर। काम कुछ नहीं करने को। बस हूर बनी बैठी रहें बहूजी। हम रात-दिन भूलकर उन्हीं के हो लिये। दफ्तर-दोस्त सब ताक पर धर दिये।

दिन गुजरे कि बहूजी ने नम रुई सा पिण्डा मौसी बूआ के हवाले कर दिया। माँ पिताजी प्रसन्न। साहबजादे आ गये थे नये। कई दिन धूम धड़ाका रहा। खूब दावतें, गीत और न्योछावरें—ओह! तब का चला यह चक्कर आज तक है—बहूजी हर साल गुब्बारा होती हैं और एक नया ऊनी, मखमली पिण्डा तीनों महिलाओं को नजर कर देती हैं। हम हैरान हैं कि ये तो सारी कुनबा-गिनती पीले पत्तों सी है, हवा आई कि सब झर एक एक करके, लेकिन हम कैसे सम्भालेंगे इस लश्कर फौज को? क्या खिलायेंगे पहनायेंगे? शिक्षा कहाँ से देंगे? जमाना और भी महंगा होता जा रहा है—अजी छोड़िये दूध मलाई, पिस्ते बादाम! रोटी सब्जी तक के अब तो लाले पड़ रहे हैं—प्याज-लहसुन का बघार लगाने तक को तेल नहीं, इधर बहूजी हैं कि हरबरी में घेरा भी तरह आँगन कमरे भरे डाल रही हैं। बताइये है न परेशानी की बात! कहिये क्या करें? रोयें झींकें नहीं क्या?

हाँ, इस आये दिन के हंगामे-तमाशे का एक खुला परिणाम हमारे लिये यह अच्छा रहा कि जिस रूप का बहूजी को घमण्ड था, वह अब नहीं रहा। पीली आँखें, काला चेहरा। मोती बिन्दी-काजल सब भूल गई हैं—न शरीर में सकत, न आँखों में तीखी धार। होंठों पर सूखी पपड़ियाँ हाथ पैरों में कमजोरी। हमेशा बच्चे पेट में भरी रहती है क्योंकि एक डेढ़ महीना साल पसारा कम न हो पाती है वरना सारा साल उबकाइयों में ही जाता है। हम? अजी हमें तो वह कनखी नजरों से भी देखना पसन्द नहीं करती है। क्या कहा! समझती है कि हमने ही उनकी देही का पसीना उड़ाया है। अपने दामन की ओर तो रत्ती भर झाँककर उन्होंने देखा नहीं है कि किस तरह बचपन में भूखा हारा भी पानी ब्लाउज में मग्न, पपड़ाये होंठों पर रख पोंछ सब सूखी सी हम करती हैं—हम क्या करें? फिर दुखती है किस्मत को—सास ससुराल दुखों को कोसती है—कुन कुन कर बुरा भला कहती है। हम क्या कहें। मुँह फन्दे, लगातार टोकना यह काम है

इस बार आठवी बार बहूजी का पैर भारी क्या हुआ है, इन्होंने घर को सिर पर उठा लिया है। माँ पिताजी का या बूआ मौसी की कोई शम नही। हम तो खैर हैं ही किस गिनती म? इतनी चिडचिडी हो गई हैं कि जवान हर घडी कची सी चलती रहती है। बच्चा को मारना पीटना हर कोन पर जहर छिडकती रहती है। हम तो ऐसी खूखार नजरो स देखती हैं कि खडे खडे मर जाने को तबीयत हो उठती है। अपना कमरा हम बडा गदा और फूहड लगता है। बहूजी साक्षात दिलद्दर। हाथ पैर गदे, बाल उलझे हुए। कभी कभी इन पर बडा तरस आता है कुछ मीठा बोलत हैं तो घुर्रा कर लताड देती हैं—कि जाओ, ये बत्तीसी किसी और को दिखाओ, सारे तुम्हारे बोये बीज हैं तस्वीर सी आई थी और भूतनी सी बना दी हूँ। जलते थे म दगकर इसीलिये हमे भी भूनकर रख दिया—हमारा सारा तरस गुस्से मे बदल जाता है—ठीक है मरो, तुम्हारा यही होना है—और क्या करें? घर की औरतें तो बडी खुश हैं कि देखो कहाँ तो घर म एक आंख थी, कहाँ दुनिया भर दी आँगन म?

आज मन मे कोई पक्का इरादा ठान लिया है, अफसोस यही है कि यदि पहले सोच लेते तो क्यो आफत म अटकते! क्यो सुनें दिन रात जली कटी! औलाद को भी ढग पूरा नही द पायेंग ता ये भी या ही कोसेंगी?

कल इन्ही खयालो मे स्टेशन की ओर निकल गये। वहाँ मिल गये बचपन के दोस्त—मन हल्का कर दिया उन्हे पूरी कहानी सुनाकर। उन्होन हम अपने तजुर्बे दिये। ऊँच नीच समझाया और तरकीब भी बता दी इस नरक से छुटकारा पाने की। हमने उन्हे खूब धन्यवाद दिया और हल्के कदमो से घर मे आये।

घर म घुसते ही सुना कि बहूजी बच्चो पर गम तल सी खौल रही है—'मर भी नही जात कमबख्त—सारा खून पी लिया शक्लें कसी मनहूस हैं—सब एक स एक बढकर बदसूरत बाप की तरह हड्डियो के ढाचे' जाने क्या क्या! कोई सुनी कही जाती है क्या यह भाषा? जी म तो आया कि सुना दें, लेकिन खानदान की इज्जत न रोक लिया—भुगत ता रही हैं। उस दिन हमने बच्चो को खूब प्यार किया जो चाहा दिलाया खिलाया बाजार घुमाने ले गये। अरे? इन बेचारो का क्या कसूर है? शहर मे सर्कस आया हुआ था, वह भी दिखाया—आज हमार मन म भी बडा चन था किनारा सा दिखाई दने लगा था, बचाव का यही सोचते हुए खूब अच्छी तरह खाना खाया बच्चो के साथ और कल किसी पुख्ता खयाल को दिमाग मे सजाकर शाति से सो गये।



परिचय

ज म—1944—देहरादून

—शिक्षा—एम० ए० बनारस हि दू विश्वविद्यालय

पी० एच डी०—राजस्थान विश्वविद्यालय

सम्प्रति—स्वत त्र लेखन,

विभि न पत्रिकाओं म रचनाएँ प्रकाशित तथा आकाशवाणी से समय समय पर प्रसारित।